

सत्य-सरोवर

२२

लेखक

जन धर्म दिवाकर जैन आगम रत्नाकर साहित्य रत्न आचार्य-सम्राट
परम भद्रैय परम पूज्य श्री आत्मा राम श्री महापुत्र

के

शिष्य

शुनि-मनोहर 'कुमुद'

प्रकाशक

महारीर जैन प्रकाशक सोमाइटी

द्वय्य दाता

ऐम ऐस जैन सघ, पटियाला

लेखक का
मनोहर स्फुट

- १ मलय दुष्ट
- २ एतद्वयम्
- ३ गिरि विभूति
- ४ विश्व विजेता
- ५ अज्ञान और धर्म
- ६ दीनक के गये
- ७ अज्ञान और धर्म (भा. अज्ञान व धर्म म. रं.)

दिल्ली का पत्र

एम. एस. जैन मभा, लुधियाना

- जैनको, १७, शाह नशीन बाजार, पटियाला

समर्पण

सादर सविनय
समर्पण
अपने परम पूज्य
गुरुदेव
के
पुनीत
पाद-पद्मों में

शुनि मनोहर 'कुमुद'

Printer

MANTII PRINTING & PUBLISHING CO.,
NEAR DEHA BABA JASSA SINGH,
PATIALA. Te. No 309

धम्मो मंगलघुविकट्ट'
अहिंसा सज्जमो त्तरो
देवाणि त नममति
जस्म धम्मो सया मणो ॥



जैन धर्म
अहिंसा, सयम और तप
की
त्रिवेणी है ।

श्रीशर ! तू जास है । त्रिश के पावन लट्ट पर मन के उबलने और
तन के उबलने अन्द-बाबह इस विहार करने हैं । "दूष का दूष
और पानी का पानी" की अजमोल और अद्भुत कला में
जिन की सोचें उदा प्रव.ए हैं ।

शुनि मतेर 'कुमुद'

दो बचन

पाठक हूँ । यह एक लघुभाष पुस्तक छात्र व वर-वमलों में
छाँद करते हृदय ही से उद्भूत लय रण है । इस पुस्तक का नाम है
'सत्य-सत्य' क्योंकि इस में छात्र को छात्र की भाँधी विषयी और
साथ ही छात्र का दर्शन हीम धर्म व विचार का है । मैं ने छात्रों
पुस्तक भवन की आधार जिना उठ गान को बन व है का प्राय
छन्दों को छात्रों का परल भूयण है और जिस का अर्थ है इस का
दशदशकिक सूत्र का परल छात्रों का परल सूत्र के छात्रों में है
है । यह गथा केन वने का सर्वम् है । छात्रों का परल
मोने और छात्रों भवन की परल है है यह गथा । यह गथा
छात्रों में केन व का 'गगर में गगर' को तरल लुगाव हुए है । मोने
का प्रथम और अन्तिम लय व दी है । इस लिये इस गथा को लक्ष
कथ कर मैं ने छात्रों पुस्तक का निर्माण किया है । छात्रों इस में
प्रथम अक्षिण और अक्षिण से अन्त तक इस में विचार कर इस का
मौख्य का अक्षिण व अक्षिण । इस में छात्र का अक्षिण, सत्य और
तर की वन मध्य सृष्टि के दर्शन हीम और छात्र को अक्षिण
अन्त लुग की छात्र वने व अक्षिण हर वृष्ट की एक एक
है पर ।

मैं ने इस को रण है अक्षिण परिधन से, अक्षिण विर भी अक्षिण
रह गगर अक्षिण विर के लिये बना प्रार्थी हूँ ।

छात्र का

सुनि मन हर 'सुगुद'

अमार-सत्तार

अब हम अपने चारों ओर पैले हुये इस लम्बे चौड़े संसार में दृष्टि घुमा कर देखते हैं तो पता चलता है कि हर प्राणी के हृदय गगन में शान्ति की मन्व्य कामना विहार कर रही है और उसे अपने जीवन पित्रे में लाने के लिये निरन्तर प्रयत्न भी किये जाते हैं, किन्तु बहुत से प्रयास विफलता के कारणों से आइत होते देखे गये हैं क्योंकि सच्ची शान्ति क्या है ? कहा है ? और अब और कैसे उसे अपने हृदय-कोष में रखा जाता है, इस रहस्य को जानते हैं बहुत कम लोग । यही लो कारण है कि प्राणी शान्ति की चाह रखता हुआ भी शान्ति से कोछी दूर देखा जाता है । यह बात तो सोलह आना सत्य है कि मनुष्य अशांति का नाम सुनना और उस के अमङ्गल दर्शन करना चाहता हा नहीं, किन्तु फिर भी सग दुरा की म्वाइयो में गिरा और बरहता हुआ पाया जाता है । इस के कारण की खोज आवश्यक है ।

विश्व सारा भौतिक है, इस के कण कण में नश्यता का नग्न नृत्य हो रहा है । वास्तव में भौतिकता के य ही कण अपनी सुख सरिता के प्रवाह के कारण हैं । अब ये कण अपनी नश्यता की अन्तिम अंगड़ाई ले कर बिखर आते हैं तो हमारा शान्ति का समस्त कल्पनाएँ विनाश के अनन्त सागर में उतर कर विलीन हो जाता हैं । वैसा कारण होता है, कार्य भी वैसा हा देखा जाता है । यह एक सत्य सिद्धान्त है । अब हमारी सुख तलैया का उद्गम स्थान ही नश्य और क्षणिक है तो बताइये इस का प्रवाह चिरन्तन कैसे हो सकता है ? कदापि नहीं ! यदि आप अपनी जीवन-यात्रा कटना चाहते हैं सुख से, तो आप को समग्र मायावा वस्तुओं की आसक्ति का परित्याग करना होगा !

माना कि दुनिया के पदार्थ आकर्षक एवं मन मोदक है, जीव बरबग इस का आसक्ति व तनुश्रो से लिपटता जाता है, अमर बल की न्याहें यह आसक्ति मनुष्य को चारों ओर से बाध लेता है और उस के जयन रस का चूस कर जावन वृत्त को हूठ बना कर रग देती है। विश्व में परिवर्तन का सुदर्शन चक्र सा चल रहा है। हर स्याग की विटारी म विभाग का काला नाग अपना पग उठाये बैठा है। मुग की हर यनिका के पीछे दुख छिपा हुआ है। हर अमावस पूर्णिमा को राट जाद रहा है। प्रभात की हर किरण स्या के अ धकार में छिपती जाता है। हर्ष और शोक का आव मिनीनी चल रही है। आकारा व टिमटिमाते टापक और मतरंगा आयमागो पींग परिवतनशाल संसार का पोल खोलने के लिये तो आती है। कहां तक जाता जाए, संसृति के हर कण में विनाश भ्रंक रहा है। आज जो मद्रल है, बल यह ही अमद्गल नजर आता है। सुख के स्वप्न टूटते जाते हैं और दुख की चढ़िया पास आता जाता है, कभी काट शत्रुता के हटते जाते हैं और मित्रता व फूल खिलने लगते हैं। यह लो, जीवन में अस्त आ गया। मन मभूर बन कर नाच उठा। बाणी कोकिला सा खेलने लगी। जीवन पवन का तरह सर सर आगे बढ़ने लगा। मुग कमल खिल गया। अधरी स लगे छूटने हंसी के पच्वारे। सारा जीवन हरा भरा हो गया। यह है जीव का अस्त। हाथ ! गया अस्त, आ गया अतमद ! सुख के फूल सब भद गये ! आशाशा की टूनिषा सब टूट गई। जावन-उपवम के कण कण पर दुख-पीतिमा पोत दी गई। बाणी कोकिल मूक है। हृदय के का अपना नृत्यरला मानों भूल गया है। यह है जावन का शिखर। जगत का यह उतगव और चढ़ाव अपना सृष्टिकता का मानों घोषणा कर रहा है। इस रात को और पुष्ट के लिये कुछ एक उदाहरण भा थाप की सेवा म उपस्थित कर ही देन, चाता हूँ, कर ध्यान ता काजिये—

जय कल्पना कीजिये, कि किसी के गृह-प्राङ्गण में अपने पुत्र की

विगाह-सामग्रियां बिखर रही हैं। मां के हृदय सभर में हर्ष-ऊमियां उठ रही हैं। पिता का मन-विदग प्रघनता का गौड़ बात रहा है और स्वयं उद्य सुवक की मनघ धरतीं म अरने भविष्य की मधुर आशाओं व नगादुर पूट रहे हैं। स्वयंतां परिवर्तनों के बल्लेमे बलियां उधल रह है। चरों आर मे 'कथाइ हा' का मुनपुर परिषां प्रा रही हैं। अब जब दूसरी अर भी बल्लिये कथा के धर क अर यहां भी देखिय, बेमा आन-द ह्य रहा है। यहां की छठ का ता कहना ही का है। वरों की सहाया का रहा है। वर के शुभागम पर 'स्वागतम्' कहने व लिये गलियां सज रही है पण दारों और भंडियो से। बदनवार गद दारों का सामा बढ़ा रहे हैं। मां धार अरने वर से एक भार उतार कर हलका हा छाना चाहने है। सुवता अरने भीरन-साथी व चन्द्र मुन क दर्शन व निय उडमुक हा रहा है। अवाता की दा जनती मराहें एक दूसरे व काहु-पारा में बाध जाना चाहता है। मधु मिलन की शुभ पक्षी के शुभागमन की शुभाशा लग रही है और व अने स्निनी आशाओं व दीपक हृद-मार्ग में संभावे का रहे हैं। आनिर वद ति का हो गया त्रिस की प्रतीक करते पलके थक गए थीं। त्रिउ महाविजन पर हर जीवन का पूज, पूज पूज कर पूजा नहीं समाता।

किन्तु हा ! भाग्य की मिटारी में न जाने क्या बुद्ध लुपा हाता है। गदवा दुर्भाग्य की चल पकी आया, आशाओं व दीप सब बुझ गये। कामनाओं के सुन्दर मरन सब दूह गये। जावन हाथी पर गिले हा कामल-कुमुद, एक टूट कर गिर पदा शृंगवी पर और उने उठा कर चढ़ा दिया गया आग की बनती-बनता चिता पर, और दूमण छोड़ लिये गया उमर की टाण पर, एदा विद-भाग में अरने व लिये।

त्रिन अर्धों म थी मस्ती ठस से चल रही है अर्धुर्ध का गंगा। शरीर का हर अण था सामा का मशर अब है भीरिहीनता का आमार। त्रिन अधरां पर था मुनरित हाथ, उद्य पर है अब मूक होत मुख-सालिमा सब गावद ! बाल सब अस्त व्यस्त ! माण का किन्दूर और

माय की बिगी शाय ! समाज के निरुर पित्रों की एक पतिना का करुण
 मन्त्र हो रहा है । मुग के फूल दुख के विशूल बन गये । हर आशा
 निरशा बन कर गाने लगी । हा ' कितना नरुवर है यह संशय !
 कितना क्षणिक है यह मायावी सम्मिचन ! हर क्षण का प्रलय उस की
 मोद में ही रहता है । भला ऐसे अशाश्वत सगर से श.स्वन मुख शान्ति
 की आशा रखना क्या बूल नही ? भूल ! भाग भूल ॥ यश ता जाय
 को अज्ञानता है श्रीर अविवेकिता जिन हम दूसरे शब्दों में 'मोह जाल
 महा कराल' भी कह सकते हैं ! मोह के नाग-पाश म पंसा हुआ
 प्राणी मुग के म्पन भी नही देख सकता, उस पर दुख या छाया तो
 सदा पड़ता ही रहेगा । उस की भाग्य पत्रिका में 'शान्ति' शब्द दू डे में
 भी नहीं मिलेगा आप का । उस के ललाट पर दुख की बिगी सदा
 श्रंकी मिलेगी । उस की आँसूँ आप गीना पायेंगे । देखा जाय ता
 शान्ति का स्थान कहीं श्रीर ही है जिसे पाते के नित्ये एक दीपक चाहिये ।
 दीपक मिट्टी का नही, जा अपनी नन्दी सा प्रभा से एक मिट्टी के घा
 में अपना वैभव विलेरता है बल्कि ज्ञान का एक चम चमता हुआ
 प्रदप, प्रवल वायु के सबल भोर्ख से परास्त न होने वाला ! क्यकि
 अन्तरजगत के भाग तिमिर के मिटे बिना सत्य शिर्ष मुन्दर की संग्रामि
 हो नही सकता । श्रीर मनुष्य अन त समय तक सगर चक्र में एक अण्डे
 की तरह लुढ़कता रहता है ।

आप ने देखा होगा कमी, कि जब तक पत्नी अण्डे के अन्दर
 रहता है तब तक वह परधीन है । एक नहा सा बालक भी उसे पकड़
 कर इधर उधर लुढ़का देता है । उसकी समस्त शक्तिया अतिक्रमित एव
 अप्रकट होती है । इसलिये विचार परशता में दुख रहता है । निरु
 जब अण्डा फूटने पर वह शहर का हवा में अपना प्रथम सास लेता है
 तो उसने जीवन में किचित् स्फूर्ति होती है किन्तु इतनी नही, जिस से उस
 की परधानता की बेदिया टूट जाय श्रीर वह स्वतन्त्र हो कर आकाश के
 असीम पित्रों में उड़ सके । धीरे धीरे उसका शरीर पुण हाता जाता

है। उसके अंगों में चेतना आता जाता है उस की पॉले उड़ने की कला में प्रमाण होना जाती है। उस की आँखें खुल कर हर निशा का पूरा चित्र खींच लेती है। एक दिन हमारी आँखें उसे आकाश की उच्चाईयों में उड़ता हुआ देखता है और उस की विचित्र उलट धात्रियों से लाखों जन मानव हर्ष के पलने पर झूल जाते हैं। अन्त जिसकी शक्ति है जो उसे अपनी इच्छा के घामे से ग्रन्थ सके और उसे बिबर चाहे उपर लुटका दे। अन्त दिशा दिशा की यात्रा कर के लौट आना अपने घोंसले में क्या उस के लिये काइ कठिन काम है। शिकारा के गाँवों से बच निकलना भी उस पक्षी के लिये एक खेल ही है। यदि उसके नेत्र पूट जायें और पाँव टूट जायें फिर उस की क्या दशा हागा भला। नितांत दुर्दशा। अपने घोंसले से सरक कर गिर जाना उस के लिये एक साधारण सा बात होगा और हो सकता है कि वह जिमा भूखे प्राणी के मुँह का प्राप्त बन जाये। उस वह मनुष्य जिस के पास नहीं है ज्ञान के नेत्र, और नहीं है जिस के साथ चरित्र के सुन्दर पैर, वह कर्मान्तरा उड़ सकना शान्ति के अन्तरिक्ष में। उसकी सब शक्तियाँ दुर्बलता से खेलती रहेगी, जिस का भयंकर परिणाम मरण उस की आँखों के सामने नाचता रहेगा। सावन भरसता रहेगा उसके पनकी के द्वार से, निता की आग में उस की मन गाँवित जनती रहेगा, अपना अज्ञानता की खेल के कटु पल सब को खाने ही पड़ेंगे।

“जायतऽ विज्ञा पुरिसा मन्वे ते दुःख मभवा”

की भगवान वीर की मजुर उक्ति क्या कभी झुठी हो सकती है। अज्ञान का जड़ उन्हाडे विज्ञा शान्ति नहीं, अज्ञानो इसे संसार की मृगमराचिका में खोजा करता है, बड़ा निगराने सिगय और कुछ हाथ नहीं लगता। एक छोटा सा उदाहरण मेरी ज्ञान का और स्पष्ट कर देगा। ज्ञान देखिये तो सही —

एक था बुद्धिया। रहता थी किसी ग्राम में। अच्छी थी वह

माये की जिन्गी खाफ । समाज के निदुर पिन्नेरे की एक पतिनी का कदगु
 मन्न हो रहा है । मुग क वृल दूय क निरूल का गव । हर आशा
 निगशा बन कर ग्यां लगी । हा । किना नदर है यद संनध ।
 कितना क्षयिक है यह मायावी सम्मिनन । हर कय का प्रलय उस की
 गाद में हा रहता है । भला ऐसे अशासन सगार से श म्बत मुव शानि
 की आशा रखना क्या भूल नहा ? भूल ! भारा भूल !! यहा ता जाय
 को अज्ञानग है और अविशेयिता जिम हम दूसे शब्दा म "मोद जाल
 मग फराल" भी कह सकते हैं ! मा- क नाग-पारा म पंका हुआ
 प्राणा मुग के स्वप्न मा नहा देल सफता, उस पर दुल की छाया तो
 सग पड़ती ह रहेगा । उस का भाग्य परिशा म 'शाति' शब्द दू दे से
 भी नहीं मिलेगा आप का । उम क ललाट पर दुल की बिंदा सग
 शैकी मिलेगी ! उम की शरै आप गीना पायेंगे । देवा जाये ता
 शान्ति का स्थान कग और ही है जिसे पाने के लिये एक दीपक चाहिये ।
 दीपक मिट्टा का नगी, जा अपनी नन्दी सा प्रमा से एक मिट्टी के पर
 में अपना वैभव निरोरता है बलकि शान का एक चम चमाता हुआ
 प्रदाप, प्रवल वायु के मथल म्कक स परास्त न होने वाला । क्यकि
 अन्तःजगन के भाग निमिर क मिटे विना सत्य शिव मुन्दर की संयाति
 हो नहीं सकती । आर मनुष्य जन त समय तक असार चम म एक अण्डे
 की तरह लुढ़कता रहता है ।

आप ने देखा होगा कभी कि जब तक पक्षी अण्डे के अण्ड
 रहता है तब तक वह पराधीन है । एक नहा सा बालक भी उसे पकड़
 कर इधर उधर लुढ़का देता है । उसकी समस्त शक्तिया अतिकमित एने
 अप्रकट होता है । इसलिये विचार परशता म दुख सहता है । किन्तु
 जब अण्डा फूटने पर वह बाहर का हरा में अपना प्रथम सास लेता है
 ता उसने जीवन में विचित स्फूर्ति होती है किन्तु इतना नहा, जिस से उस
 की परवानता की बेकिया टूट जायें और वह स्वतन्त्र हा कर । आकाश के
 अज्ञान पिन्नेरे में उड़ सके । धीरे धीरे उसका शरीर पुण होना जाता

है। उसके आगे म चेतना आती जाता है उस का पोंसे उड़ने की फला म प्रयोग होता जाती है। उस का आगे सुल कर हर निशा का पूरा चित्र पोंच लेती है। एक दिन हमारी आँते उसे आकाश की उंचाईयाँ में उड़ना हुआ देखता है और उस की विचित्र उलट चाबियों से लाखों जन मानस हर्ष के पलने पर झूल जाते हैं। अत्र किसी शक्ति है जो उसे अपनी इच्छा क धामे से गंध सके और उसे बिपर चाहे उधर लुढ़का दे। अत्र निशा निशा का यात्रा कर के लौट आना अपने पोंसने में क्या उस के नित्ये काइ कठिन काम है। शिकारी के बाणाँ से पच निहलना मा उस पहा के लिये एक सेज ही है। यदि उसने नेत्र फूट बर्ये और पाखें टूट जायें फिर उस की क्या दशा हागा भला। नितान्त दुर्गता। अपने घोंसले से सरक कर गिर जाना जब क नित्ये एक साधारण सा बात होगा और हो सकता है कि वह किसी भून्ने प्राणी के मुल क प्रास बन जाये। वन वह मनुष्य जिस क पास नहीं है ज्ञान क नेत्र, और नही है जिस के साथ चरित्र के सुन्द पेंग, वह कदापि नहीं उड़ सकता शान्ति क अन्तरिक्ष में। उसकी सब शक्तियाँ दुःखयोग से झेलती रहेगा, जिस का मर्दकर परिणाम सदैव उस की आँतों के क्षमने नाचता रहेगा। खवन बरसता रहेगा उसक पनडों क द्वार से, चिता की आग में उस की मन शान्ति जलती रहेगा, अपना अज्ञानता का बेल के कट्ट पत्त मत्र को ग्वाने ही पढ़ेंगे।

“जायतऽ विज्ञा पुरिमा भव्ये ते दुक्ल मभवा”

की भगवान् का मगुर उक्ति क्या कभे भूटी हो सकती है। अज्ञान का वह उल्लाडे विना शान्ति नहीं, अज्ञानी इने संसार की मृगमराचिका में लंबा करता है, बहा निराशा क विश्वास और कुछ हाथ नहीं लगता। एक क्षण सा उदात्त मरु ज्ञान को और स्पष्ट कर देगा। जरा देखिये तो ही —

एक सा सुदृश। गूती थी विसाँ प्रम म। अच्छी थी धर

स्वभाव की। उसे का मन्ना चाहते यानी परसका माग्य रिहाया था
 वह। दृष्टिगत की उस पर विशेष कृपा थी, उस के परिवार में उसका
 कोई भा गरी था, अफला एक वह था अपना। वे रिशत में था फी व
 लिये, चरता कात कर अपना पेट पालता था वह। एक दूरी कुटी
 पास का भोगी ही उस का सभ्य था। दिन में सततान माग्यर का
 रश्मियाँ उस का भोगी में लेकता रहती और रात्रि का चन्द अगता
 शक्तिन खाता उस कुटिया पर निगेर देता। किन्तु रात में पेट भ्रम
 हाती तब उस की भोगी म मित्र का एक दाव मान होता जो
 अन्वकार का सामान कर सकता। पेट पुयो पाप उस की लाज को
 टापने के लिये प्रयास था। भरता हा उस के लिये राटिया थी। भोगी
 के हर निनके मे सुनापन निबल रहा था। अगते अघमने पेट पर हाव
 रण कर, चुप चाप अगते राम का नाम ले कर सो जाती।

एक दिन रात अघेरा था, रिगारी बुद्धिया के चरमे की तकली
 कहीं गी गई। लगी दृष्टी उस थी, किन्तु रात अघे, क्यकि घों
 अ घरे म कुल सुभता ही न था। एक उस रिशत के पास था हा
 नहीं जो जना लिया जाता। इधर उधर अघरे में ग्योना तो बहुत,
 किन्तु कुछ हाव न लगा। आबुल ली हा कर चली आई बाहर।
 कुटिया के बाहर आ कर लका हा गई और लगा निगे की राह देखने।
 कुछ देर के परचात वही से एक सुरक गुजरा। माइ पाल उठा, वे चया
 वे चया। मेरी तकला ता दू ट दे। 'कहा म्या गई तकली गुहाग मा'
 यह मुवा बला—'वस यगे अर हा' बुद्धिया का उत्तर बिनस था।
 सुरक नीला—'यनी अ दर लो गई है तो बाहर करा मिलगा तुम्हे १ मीटर
 की चोड़ भीतर से मिलेगी।' किन्तु भोगी, म ता अघेरा छा रहा है
 बेटा। हाव को हाव तो दिवाइ नहीं देता। बुद्धिया ने उन्नर दिया—'यदि
 पर में अघेरा है, तो उमला कये माइ। फिर देखो आप की तकला
 अभी मिल जायेगी।' 'मि ने बहुत दू टा नहीं मिला' वह बुद्धिया माइ
 वाली। सुरक ने एक जनाई दियासलाई तो तपली दरकी के पास पकी

मिना। 'यह तो अपनी सफला माता।' 'अधरे ने इसे छिपाया था पर प्रकाश ने इस को पा लिया' यह कह कर उस मुस्क ने अपना यह पकड़ा।

यह तो है एक उदाररण्य। ठीक इथा तरह मनुष्य सच्ची शांति का, जिन का स्थान उसका अपना हृदय है, सारर दू ट रहा है, और उन बुद्धिवा का तरह अशान्त हो रहा है। उस का अशांति का मूल उसका अज्ञान है। यह मुझ, जिन के लिये मात्र मात्र फिर रहा है हर प्राणी, वास्तव में यह अज्ञानाधकार का यवनिका के पाछे है उन उठाने की आवश्यकता है। शांति हमारे पास लफा प्रताला कर रही है। बस अज्ञान घू घट को हटा हो तो आप क नपन उस के मध्य दर्शन में धन्य हो जायेंगे।

संसार की नश्यरता क और भी अनेको उगाहरण हमारा आंगिा के सामने है, मुनिद-एक सट ने अपने रहने के लिये एक पानाय मकान, उस का नाम रखा गया 'अशोक भवन'। कितना सुगर है यह नाम। ऊँचा इतना, कि देखने वाले की पगड़ी गिरना है फिर से। आकश से पाले करता हुआ विचारे गरीबो क हृदय में आग लगा रहा है। न जाने कितने निर्धनो की जीवन-लताश्रा का कुचल कुचन कर उस का निर्माण किया गया है। और क्य पता कितने यतामो की हड्डियो से भरी गइ है उस को नान। उस अशोक भवन क गारे म न मालूम कितने बेकसो का रून टाला गया है। चलो केन भी बनाया हो यह भवन, हमें तो उसका थिरता का जाच हा तो करनी है।

तो यह भूकन्य आगया। गगन चुम्ब, भवन की टिब्बता सब नष्ट और पराया हो गई। उसका एक एक हँट का अब धूल बन कर उड़ रहा है। यहा एक मनागर भवन था जो दर्शकों के मनो को बरबस हरका था, यह आज मिट्टी का ढेर बना हुआ है। उन में अब आकण्ठ का नाम भी नहीं, फेवल एक मिना का ऊँचा सा टाला, जो सगत की नश्यरता का दिदाय पीट रहा है और मूक वाण्या से

बढ़ रहा है कि यह है 'अशाक भया' विगर्षा इह ईद शीर ईद के हर
 कण में आन शोः द्याया हुआ है। किन्तु हा। माहाय प्राणी के योग
 फिर मा कही चल रहे हैं। यह तो इस पर फिर भी लट्टु हो रहा है,
 माह की मन्त्रि या पर वे भाग है यह शीर उस व मनों म यह
 अपने आय को भूल ग गय है। इगी लिय अमान्त शीर दुप्ती है
 शीर शान्ति उम मे कामा शूर है।

लजिये, किमा व पर में आन एक अनमोल पुत्र रय का काम
 हुआ है। मा का हृदय-बल्लो गिरल उठा है। मा म गया गयो आशाओं
 का भडा लग गयी है। प्रममा का पाला मर कर बाहर उमक रहा है।
 मा अपना गवनात बालन का स्नेहाद्रं शौलो से निहार रही है धार धार।
 उस व चन्द्र मुग का धार धार चूमता है मा ओ टर्की, ममका सर्वस्व यह
 है। बिना उम का देरी उसे चैा कही। अघर हा जाती है,
 जब वट गवर नगी आता एक पल के लिये। बितता मोह है मा का
 अपने पारे नदे मुदे से।

उपर पिता का प्यार क्या कम है? यह मा उसे अपनी
 शौलो की उपेक्ष समझता है। मर अ धरे पर का दीपक, अंधे की
 डंगारी। उम व लिये अपना ता मन धन सब निश्रुकर करता है।
 किन्तु हा। उपर भाग्य यह रहा है कि अरे बच्चू क्या समझता है?
 यह सब आशाएं पानी के बुलबुले की तरह हवा हो जायेंगी। यह
 दीपक मदा जगता न रहेगा। यह धाद का टुकड़ा एक दिन टुकड़े
 टुकड़े हो जायेगा। यह पलने में भूलने वाला एक दिन अलतो चिता
 पर नढ़ा होगा। सब हसी पुरा का पूर हो जायेगा। यह जीवन की
 पू जी लुट जायेगी एक दिन मौत व निर्दय हाथो से। किन्तु कौन सुनाता
 है भाग्य की आवाज़!

जब मोह का परना पक जाता है तो सत्य बहुत दूर चल जाता
 है शीर मनुष्य दुनिया के जाल म श्लेशम की मक्का की तरह पल
 की जाता है। धारा धरे की लगे लगे कल भागी है भला व मागे के कदमे

और धुरे फल उस के दिने कवल लंग हा हैं । यह मानक जग की
 दृशना पर एक मुगधित पुल था कर रिना था और सोरे घर का
 मुगधित कर रहा था । मौत के एक हलक से भय ने उमे नाचे गिय
 त्रिया डाल स और पका है मुग्भया हुआ धरता का छुता पर । मौत
 की चील उस टका ले गई । उर । कितना नि दुर है यह मौत । बड़े
 उमे मरता के घना इस के आगे नूँ भी न कर सक । इस ने सर का
 पकडा गलन म और मरोड त्रिया उमे आन की आन में । अनगिनत
 जीवन इस के भूमे उर का आशा बन चुके हैं किन्तु हर मौत
 निनीनी दे रहा है अपने प्रलय काल की । आन जा जमा है, किना
 दिन वह मुक हा कर रिनासिता न मेन मेन कर बुझाव के निरु आ
 पहुचल है, और एक दिन उस के निर्देय पात्रे में घुरी तरद दस
 जाता है । मुर्खों भरा चेहरा, सफर काल, लदरकाता यम, घनुय
 सा भुना कमर, पते से कापने शप, मौत का संदेश दे रहे हैं । क्या
 इस से जगत का नररता नों टकता ? यह उर्य अन्न का चन
 अनन्त काल न चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा ।
 एक यह, जो इस चर स कर निकभावसु उमे ही शांति बिना और
 दुख उस का सब उड गया काटू का भान्ति । सच तो यह है कि
 जगत का हर मगल वास्तव म अमंगल हा है । अत यह है अकार
 संसार ।



महा मंगल

प्रभु महाशार ने अपना अमर वाण्य म कहा कि-

‘धर्मो मंगलमुचिष्ठ’

अर्थात् धर्म ही उत्कृष्टमंगल है। प्रश्न उठ सकता है कि धर्म ही उत्कृष्ट मंगल क्या है ? उत्तर इस का सरल ही है वह यह, कि धर्म ही विशाल मंगल ! इस की गोद में शान्ति सदा संचिता है। सदा सुखप्रद है, दुख तो इम के निकट पटकता ही नहीं ! इसी लिये तो कहा जाता है कि धर्म का आत्मा का हर सुखाकारी मानव को समझना चाहिये और उसे अपने जीवन में साथे म टारने का प्रयत्न करना चाहिये। धर्म जब तक जीवन में नहीं उतरता, जीवन में चमक नहीं आता। जीवन की सोई शक्तिया जागता नहीं। धर्म एक सजीवनी बूटी है जो निःप्राण शरीर में नया जीवन टाकती है या यँ कहिये कि धर्म ही असला जीवन है इस के बिना जीवन जीवन नहीं, बल्कि मिट्टी का ढेर ! इस ढेर का भी कुछ न कुछ माल तो पड़ेगा ही किन्तु धर्म विहीन जीवन का तो मोल भी तब पकता, निःफल जीवन धरती माता के लिये भार बन कर रह जाता है। चला भार ही बना रहे तो भी संसार का कुछ नहीं सिगड़ता क्योंकि पृथ्वी ने तो अपनी छाती पर एक नहीं अनेक विशाल पत्र उठा रखे हैं तो धर्म शून्य जीवन न बाह में यह द्रव जायगा क्या ? किन्तु दुख तो यह है कि धर्म-विरोधी क मन म दया नाम की काद बीज नहीं होता। अत्याचार और उपद्रव उसक जन्म का उद्देश्य होता है। उद्वेगता और उच्छ्वेदलता उस क जन्मगत गुण होने हैं। क्या निर्धन और क्या

घनगन सब उस की अधर्म चढ़ा म पिस जाते हैं । किसी ने मान चित्र पर कालिय पोत देना उस का तो मनोरञ्जन हा है । नारिया के सतीन पर छापे मारना और अशुभय बालका का मून अपने सर लेना, उस के लिये एक साधारण स काम है । मून पशुओं के धड़ धड़ाधड़ उड़ाने म उन क हाथ कन कापते हैं भला ! ये सब पाप के रग विरंगे खेल धर्म के शमुग्रा न हाथों से खेले जात है । आज म, यह पापाचार कम नहीं, मानव-सृष्टि के महानाश पर दुख की श्यामल घटाएँ छा रही हैं । चारों ओर मच गया है एक हाहा कार । शहि ! शहि ! की ध्वनिया आ रहा है हमारे कण्ठ-बुहरा में ! हा ! कितना अशांत है यह मानव-रुमान ! क्या भूतल पर होगा अवतरण कमी शान्ति दया का ? क्या होगा कमा उस का भव्य दर्शन ? क्या नहीं, अशुभ किन्तु शान्ति न राजपथ पर चलने से । शान्ति का मार्ग है कौन सा ? यह भी आप का बनाना हा हांगा । वह है महा मान एक धर्म का मार्ग ।

अपने पिछले प्रकरण म ध्यान का मन्त्र का चुना है कि जगन के भूठे पदार्थों का भूठा मनन हमारे दुख का मूल है और संसार में हर ओर हमारी दृष्टि के स सुख अशांति खड़ी निगाइ देतो है और हमारे सुख के गगन पर दुख-बर्ली छाने में कद देर नहीं लगती ! खरी बात तो यह है कि सग शान्ति का एक मात्र पथ तो 'धर्म' का हा है जिस पर चलने से हमें लौकिक और अलौकिक सुखों का भण्डार मिल सकता है ।

आप मेरी बात सुन कर चाकि उठेंगे और कहेगे "क बाद महाराज ! आप ने भा मून कही !" कि "धर्म से हर सुख मिलता है" यह मन आप की सरस, ही झूठी है । आप कहेगे कि हमारा अनुभव कुछ और कहता है ! आप की जिह्वा यह कहे बिना न रहेगी कि हमने हमारी आँखा ने धर्म क नाम पर अरुख्य अत्याचार देखे हैं । धर्म क नाम पर परस्पर सर पूडते रहे हैं ! और एक

दूसरे पर कीचड़ उड़ालते रहे हैं धर्म के टेढ़ेदार। सन्तियों का सतत लुटता रहा है धर्म की आड़ में ! मुग्धा, ईर्ष्या, शीर पक्षपात इत्यादि भयंकर काले गगन धर्म का नंगेर में से निकलते रहे हैं। धर्म ने दुनिया में सुख शान्ति की वर्षा तो नहीं की बल्कि बज्र-पात किये जिन्होंने मनुष्य वर्ग का कच्चा मर निकाल कर रखा दिया। भाइ भाई में फूट पड़ गई। एक मानव दूसरे मानव से जुग हा गया ! आपस का प्रेम और प्यार सब खो बैठे ! धर्म स्थानों की नीवारों ने हमारे माँ के अन्दर भी तारों लड़ा कर ली माला के मार पर बिखर गये ! उन का आभा सब गूढ़ हो गई ! देश क टुकड़े टुकड़े हो गये ! विदेशियों ने हमें धर पकड़ा और हजारा वर्षों का दासता का कटु फल उसे भागना पड़ा ! आज भी भारत माँ के कलेजे क टा टुकड़े धर्म की छुरी से किये गए हैं। हिन्दू और पारु का चटारा धर्म क खतरे को टालने क लिये हा किया गया है। फिर बताइये कि धर्म का सेवोत्तम मङ्गल कैसे कहा जाये और इसे सर्व सुखा का साधन कैसे मान लिया जाय भला ?

आप क यह बात भी किसी अपत्ता से तो सत्य हा है किन्तु एक बात आप का भी समझ लेना चाहिये कि इन सब बुराइयों का उत्तरदायित्व धर्म के कंधों पर नहीं टाला जा सकता क्योंकि इस सामाजिक वैपश्य का मूल तो अपने अपने मत का अधानुराग है जो गुण दोष की परीक्षा गहर करी देता। अपने दोष और आँग के गुण उस का मनीष दृष्टि में चढ़ ही नग चलने राग द्वेष का इस पैनी कैंची ने हा मानव समाज के टुकड़े किये हैं। यह पक्षपात मनुष्य की दृष्टि को छाटा बनाता है। जिस से 'धर्म' जैसे विराट तत्त्व को देखना नहीं आता। मत तो मति का उपज ही है और धर्म हैं सत्य का दूसरा नाम। मति तो सब का भिन्न हा हाती है इस लिये मत मतान्तर भी परस्पर भिन्न ही पाये जाते हैं। धर्म का मत के पिजरे में बाँध कर हमने धर्म जैसे सर्वांगीण सत्य का जटिल बना दिया और

हमारा अलग अलग धर्म हो गया और उस पर अपने मत को हम ने लगा दी मुहर । वह सीमित हो गया किसी एक विशेष मनुष्य समुदाय के लिये और उस का नाम पड़ गया "सम्प्रदाय" । यह शब्द हमें बड़ा प्यारा लगा और इस के मन्त्र ने हमें सत्य से दूर ले जा कर पटक लिया और हम सम्प्रदायिकता की तंग गलियारों में चक्कर काटने लगे । और सत्य का राज पथ हम से ओझल सा हो गया । जय सा किसी ने किसी के मत पर आक्षेप किया कि बस वह क्यों वहाँ पर खून की नदियाँ ! हम टूट पड़े एक दूसरे पर राक्षस से बन कर और अनेक लुमायना और जालती तखवीरों को आन की आन में डर कर दिया इस मत के झूठे माँह में आकर । प्रायः देखा गया है कि मनुष्य अपने मत का रागा बना हुआ दूसरे के सत्याय का अपलाप करता है और उस क मिथ्याय का पकड़ कर उस संसार की दृष्टि में गिराने का प्रयास करता है । इस तरह हमारा दुनियाँ में सड़ाई भगड़े झूँथ और कई प्रकार के उपद्रव खड़े हुये, जिन्हीं ने हमारी समाज को जड़ों से हिला लिया । हम अपने में खोपले हो गये और तभी हमें विदेशियों के हाथ की कठ पुतली बनना पड़ा । यह देखा जाये मत तो एक दीड़ है जो सत्य को खोजने के लिये लगाई जाता है । सत्य पूर्ण है इस लिये धर्म पूर्ण है मत सदा अपूर्ण है । अपूर्ण से हम पूर्ण को कैसे समझ सकते हैं मला । निस्साम सहीम में कैसे समा सकता है मला । अनन्त सान्त के घर में कैसे आ सकता है जो ! अट्टाई अगुल के बुद्धि के पीते में सत्य का अनन्तता को कौन नाप सकता है मला ? हा, हर एक मत में कुछ न कुछ सत्य अवश्य है हमें उस के सत्याय का भा आदर करना चाहिये और उसे अपने सत्य में मिला कर दुगुना बना लेना चाहिये । हर मत के दृष्टिकोन को समझना हमारा कर्तव्य प्रथम है, तभी हम धरि गारे सत्य के समीप पहुँच सकेंगे । दिवाकर के आने पर अधकार स्वयं भाग उठता है । ठीक सत्य के सामने सब कुत्सित भावनाएँ

श्रीर द्वाद निःशेष हो जाने हैं। विश्व बन्धुत्व की विचारणा जाग्रत होती है। और साथ समाज एक प्रेम की टोरा में पिरोया जाता है। स्वर्ग भूतल पर प्रा जायेगा। सत्य के पाने के लिये मध्यम्य भावना परमावश्यक है विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं का समन्वय करता होगा। दृष्टि भेद से सत्य भेद नहीं होता। सत्य तो एक ही है वह नित्य अराण्ड और अविनाशी है

इस उक्ति की पुष्टि में नीचे एक छाया का उदाहरण दिया जाता है।

एक था नगर बड़ा सुन्दर। वैभव और ऐश्वर्य खेलता था उस की गोद में। बड़े लम्बे चौड़े रीनक भरे बाजार थे उस के। उस के एक चौराहे में एक धुन खड़ा था किरी नेता का, जो विलक्षण ढंग का बना हुआ था। उस के सामने का भाग था चान्दी का और पिछला भाग था उस का खान का। उस तरह वह चान्दी सोने का मिला जुला पाषाण चित्र हर राती के नाना को बरबस मोहता था। सभी एक पुरुष सामने से निकला और उस धुन का देल कर सदसा में उठ गइ। 'कितना मजोहर है यह धुन। कला धर्य सजाव हो कर मानो सामने खड़ी हा।' उस ने प्रशंसा की और आगे निकल गया। इतने में एक दूसरा राहा गुजरा पाछे की ओर से, उस की गजर भी उस खड़े धुन पर पड़ा और गाल उटा प्रजी वाह क्या करने। कलाकार ने तो अपनी कला में कमाल कर दिया। देखो ना कितना आश्चर्य है यह सोने का धुन' उस ने मरी प्रशंसा ने दो चार फूल भाड़े और आगे चल दिया। कमा दोनों को इकट्ठे होने का सौभाग्य मिला बात बीच में बात उस धुन की चल पड़ी। एक बोला 'कहो यार आप ने उस चान्दी के धुन में देखा जा चौराहे में खड़ा किया गया है। अजीब है तो खान का है सोने का। आप ने उस पर फूटी निगाहें हा डाली होगी। "चुप रहो जी प्यारा बक बक न करो। चान्दी के धुन को सोने का नाने हो। बड़े अर्थ

हैं त्राँवों वाले बन कर ।" दूसरे ने उस पर भाड़ डाल दी । तीसरा मिन पाग ही रखा था उस ने कहा ! "तुन लडो मन, घटा स्थान पर पहुचने मे सत्र निर्णय हो जायेगा । दोनों उस की बात पर सहमत हो गये और उधर को ही उठ कर चल दिये । युग के निकट जाते ही एक ने दूसरे का आगे घसाटा और कहा 'कि देग आगे लोग कर, है चान्नी का कि नही ?' दूसरे ने उसे पीछे खोंचा और बोला "देख ध्वन से, है साग का कि नही" दोनों लजा के मारे पाना पानी हो गये और आगिर उधे एक दूसरे की बात का समर्थन करना पड़ा । और अपने अपने पक्ष का मूठा हठ उन के मन से परत लगा कर उड़ गया । सत्य उन के सामने आ कर झलकने लगा । दृष्टि भद स सत्य में भेद नही होता । सत्य एक ही है और मन अनेक है । सत्य अनादि और अनन्त है और मत बन बन कर विगड जाया करते हैं । मतों की अनेकता में सत्य की एकता स्वाज्ञा चाहिये ।

एक ही पृथ्वी पर अनेक प्रकार के भवन बड़े हैं कोई छुट्टा और कोई बड़ा, कोई सुन्दर तो कोई असुन्दर किन्तु जिस धरती के सन्ध्यल पर वह शांत से बड़े हैं वह तो एक ही है न । उस पर बने घर अनेक हैं, और देखा, वह महान आगे और छोटे छोटे भागा में बन जाता है । जिनको कमरे कहा जाता है यदि इन सब अलग अलग कमरों का दीवारों हटा ली जाएं तो एक ही चार दिवार ही बेष रहेगी । यदि वह भी गिराटा जायें तो ऐसा समतल भूमि रह जायेगा जिस का आर पार कुछ नजर नही आयेगा । टाक इस तरह मत मतान्तरों का भित्तिवा ने अनन्त सत्य को छोटा छोटे टुकड़ा में बाण दिया है । अब तक इन दागारों का भाड़ न टूटेगा तब तक अत्यन्त सत्य का विराट भूमि पर हमारी दृष्टि न जा सकेगा । सत्य जैसे महान तत्त्व की किता समझनाय क पिअरे में बाधा नही जा सकता । अकोशै हृद्य मनुष्य इस के महान दृष्टानों से तो सत्य बचित ही रहेगी ।

देगिय । एक वृत्त हमारे सामने लड़ा है । उसकी विभिन्न डालियां भुका मुझी हुए पवन के भूले म भूल रही हैं । उन का एक एक पल अपने रस में छुलन रहा है और उसका एक एक पल अपना हरयाली पर इटला रहा है । उस वृत्त के पल, पत्ते और टहनियां भले हो अलग ही किन्तु उन सब का जवन-आश्रय तो एक मूल ही है न । इस भान्ति सब मर्ता का आभार मत्व एक ही है ।

भूत, भाज्यन् और यौमात का एक ही पग में नापने वाला धर्म (सत्य) एक विघट पुण्य है । सामाजिकता साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता आदि धार्मा स धर्म (सत्य) का बाधा नहीं जा सकता । इसका सांश सम्भव आत्मा के साथ है और इसे किसी तरह भी आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता । आत्मा और धर्म का प्यार अनादि है और इसी तरह बना रहेगा सदा य लिये । जानिये एक उदाहरण

शरीर सब के अपने अपने हैं आर भिन्न भिन्न हैं किन्तु आत्मा तो एक ही है । आप कहेंगे कि नहीं, आत्मा भी वृषक वृषक ही है, एक नहीं । किन्तु मेरा अभिप्राय “आवश्यक उपयोग लक्षण” से है क्योंकि शांति और दर्शन हर आत्मा का गुण है जिस से अनेक आत्माएँ एकता की माला में पिरोई हुई हैं । हम शरार को काट सकते हैं किन्तु आत्मा को कौन तलवार काटेगी भला ? कोद नहीं । उस को तो उस की प्रखर धारा छू भी नहीं सकता । आग शरार को जला कर भस्म बना देती है किन्तु आत्मा उस की लपेट में नहीं लिपट सकता । वस ! मत बन बन कर नाश होते रहें य किन्तु सत्य आत्मा का भान्ति अपनी अरुण्डता की पताका पहचान रहेगा ।

शीतलता जल का अपना स्वभाव है । अग्नि के ससर्ग से भले ही उस में उबाल आ जाए और वह कुछ समय ऊपर से जलता रहे और उसे छूने से हो सकता है कि हाथ का फूक भी दे किन्तु यदि वह ही गरमागरम पानी की पतीली उठा कर जलती आग के सिर

उठता है तो वह हिंसा के कारणों में घायन हुए बिना नहीं रहता। शरीर से की गई हिंसा द्रव्य हिंसा है और मन में की हुई हिंसा भाव हिंसा कही जाती है। मनुष्य द्रव्य हिंसा भाव हिंसा से जन्मता है और भाव हिंसा वेगवती हो कर द्रव्य हिंसा का शोर चढ़ती है किन्तु कभी कभी हमारी वाणी और शरीर से किसी को कुछ पहुँच रहा होता है और उभर उम के प्रति कुशल भाव भरे रहते हैं। देखिये —

मा का एक है बालक। साग गिन खेलता रहता है। न पढ़ता है न लिखता है। घर में आते ही घर का सर पर उठा होता है। कभी मा से लड़ता है ता कभी अपनी दाँती को दो चार लातों मार जाता है, यदि उस को पैसे न मिलें ता। घर से निकलते ही दो चार लड़ाइयाँ मोल ले कर आता है। घर की चाँचो चुग कर ले जाता है पूछने पर झूठ बोलता है। मा समझती है किन्तु उस से मत नों होता। शिक्षा का उम पर वह ही फल है जो दशत का करीर नियम पर होता है। मा का प्यार उस के चरित्र के लिये तलवार बनता जा रहा है। एक दिन उस का चापू उम को पकड़ कर पीट देता है। बच्चा कहता है 'मेरा पिता बड़ा कठोर है जो मुझे कुछ तरह मार रहा है किन्तु उसे विनय हो कर ऐसा करना पड़ा है। विनाय इस के और उपाय भा क्या था ? क्या उस के जीवन उपवन को छेदि प्यार दलासे में नियम कर दिया जाता ? ता फिर बड़ी भारी दया हो जाती क्या ? नहीं, वह दया न होती बल्कि दया की हत्या होती : याद रखिये, दया के माह में आ कर अपने कर्त्तव्य को मुलायम नहीं जा सकता। जो तय्य की आइ लेकर कर्त्तव्य विमुख हान हैं उन की दया जन्म-जगत् के लिये विनाश कारी हुआ करता है। पिता का मार उस के लिये सुधार बन गई। विशुद्ध आदर्श अहिंसा की दृष्टि से भले ही उसे हिंसा कहा जाए किन्तु व्यवहारिक दृष्टि कारण उसे भावक धर्म की सीमा में बाहर नहीं जाने देगा। क्रोध आदर्श हवा में उड़ सकता है, धरती पर नहीं

चन सफ़ा । आदर्श बीतराग पुरुषों का भूषण होता है जो समाज के बाधाओं से सर्वथा मुक्त होते हैं और बीतरागता के सिवाय जिंदा का और कोई लक्ष्य और कर्तव्य हा नहीं होता । निम्न उदाहरण द्रव्य और भाव दिशा का स्पष्ट करने में सफल हो सकता है —

एक था भिक्षु । नगर से दूर उस ने एक बग़ा रखा था अपनी कुटिया । उस शान्त और एकांत कुटि में प्रभु चिन्तन चलता रहता, जो आत्मा का सच्चा व्यायाम है । आज कल लोग व्यर्थ की बातों में जीवन के अनमोल क्षण ख़र्चा करते हैं यदि वे ही क्षण प्रभु चिन्तन में अर्पण किये जाएँ तो जीवन उत्तमि के शिखरों पर पहुँच जाये किन्तु आज आध्यात्मिक चिन्तन का स्थान विषय चिन्तन ने ले लिया है, जिस से जनता का जीवन गिर रहा है पतन की राशियों में । वह रात अपने स्वास्थाय ध्यान और भजन में मस्त रहता था सदा ही । एक अलौकिक श्रेष्ठ भक्तता था उस के मुख मण्डल पर और सौन्दर्य का रश्मियाँ फूट फूट कर निकल रही थी उस के रोम रोम से । उस की मोटिनी मूर्ति देव देव हर दर्शक का मन मुग्ध हाता जाता था । वह प्रतिदिन मित्रों के लिये नगर की गलियाँ नापा करता । रूखा सूखा भोजन जैसा वैसा भी होता था कर प्रसन्न रहता । जो बच जाता वह उसे फिर भूख लगने पर खा लेता । इस तरह उस के क्षण निकल रहे थे शान्ति और सुख से । गली में घुमते हुए वह गाया करता था कि —

दयागर्त को स्वर्ग मिलेगा

नास्तिक नरक द्वार ।

दया दान और दमन बिना

सब मिथ्या है संसार ॥

उस नगर की एक गली में एक नास्तिक का घर था उस की भद्रा किसी महात्मा पर न थी । वह सत्ता की सिंघौ उड़ाया करता । उस

भिन्नु को बड़ ढोंगी कहा करता और पूर तिल भर कर तिन में सौ बार उस को कोम लिया करता । किन्तु उस की स्त्री बड़ी मुशील थी । धर्म-कर्म में सब से आगे रहती, यहां गन पुण्य का काम होता, बड़ बड़ कर भाग लेता । सत्संग का आत्मा का स्नान समझती । पूर पाठ उस के दैनिक कार्य क्रम का मुख्य अंग था । कोई भिखारी उस के घर से खाला न जाता ।

एक दिन बड़ भिन्नु अपना राग अलापता हुआ उसी गली से गुजर ग्य और उस के घर के सामने आ कर खड़ा हो गया । उस ने जब देखा तो भट अचछा अचछा भाजन उसे ला कर दे दिया और उड़ ले कर चलता बना । नास्तिक विचारा दान्त पीसना रह गया । और कड़क कर बोला—इस तरह घर कितने तिन चलेगा । क्या इस हट्टे कट्टे के लिए इतना परिश्रम करता हूँ मैं ? ये तो खाऊ हैं खाऊ । दुनिया को स्वर्ग का लाभ और नरक का भय दिखा कर ठगते हैं फिरते हैं यह तो ।’

‘जो हुआ सो हुआ, आगे के लिये एक टुकड़ा भा राटी का लिया तो तेरी ऐर नहीं, यह समझ ले तू ।’ किन्तु उसे यह शिक्षा कब भाता था । उस ने एक न सुना और अपने पुण्य-दान में निरंतर लगी रही ।

नास्तिक ने सोचा ‘यह तो मानती नहीं और सारा घर इन भूम्हे नगा के हाथा लुटाया जा रहा है । ‘यदि क्रिया जाए तो क्या किया जाए’ आखिर उस की उलटी बुद्धि में एक उलटी ही बात आ गई उसने कहा क्या न इस भिन्नु का ही समाप्त कर दिया जाये । अब तक यह रहेगा इस को फरी ता समाप्त ही न होगी । न रहेगा बात न बजेगी मसुगी । उसका मन बुरा करने पर सहमत हो गया ।

एक दिन बड़ शांत और सरल हृदय भिन भिक्ताउन के लिये उसी गली में आया तो उस के गायन की आवाज अते ही नास्तिक भट

घर ने निकलना और उस मशाला के पट में अपना लज्जर घाव दिया, वह गिर पड़ा और सिसकने लगा। किंतु उस ने अपने मन में बैर-द्वेष का मैन नहीं आने द्या। समता के उपवन की सैर करता हुआ वह अपने शरीर से निकल गया। यह है अत्यन्त और आदर्श अहिंसा जिस का मन्दिर क्षमा भि तु क त्प पर पाया जाता है। यह नस्तिक है हिंसा का मूर्ति, जैसे हाँ लागे सकार में उपद्रव और अशान्ति का चिनगारिया उछुला करते हैं। उस की मुरीन रत्ना ने जब देखा तो हाव कर फ रह गई। गनी सारी चन्ति सी रह गई। उस भक्त नारी की आँसों भर गई और वह कहया जन बरसाने लगा। जैसे हाते हैं त्या की तसवार मदगृह्म्य। वह घातक पकड़ा गया और राजा ने उस दापो समझा और उन मृत्यु नष्ट दिया गया। एक दिन उस को शूली पर चढ़ा दिया गया। मानो उस की नाशिकता का अत हा गया। राजा ने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया। यह दण्ड न्याय पुर्ण है या नहीं यह निय्य आप करें किंतु एक बात आप याद रगिये कि अहिंसा और न्याय हा सूर्य और तिरया सा सम्बन्ध है। मात्र दिना द्रव्य हिंसा से चलवती हाता है।

अहिंसक अपने अधिकारों पर सन्तुष्ट रहता है दूसरों की ओर लालचाई हुई आँसों नहीं रखता वह दूसरे के अधिकारों को कभी लूटना नहीं, हर मा वहिन का मान उससे हाथा में सुरक्षित रहता है। दूसरे की रक्षा के लिये सच्चा अहिंसक कभी कभी अपने जीवन पर खेल जाता है।

हिंसा से विश्व में शान्ति कभी ही नहीं सकती। अहिंसा ही, सच पूछो तो शान्ति की जननी है, अहिंसा के राज पथ पर चल कर ही संसार सुख से आ सकता है। अहिंसक उदार हाता है। उसका अपनत्व परिहार तक सामित नहीं बल्कि संसार तक हाता है। उसे हर जगह अपना घाप दीखता है 'राग और द्वेष के संकोर्ष घरे से निकल कर प्रेम के महा मार्ग पर आ जाता है यह। यहा आकर उसका स्वार्थ

निश्चय ही जाता है और धीरे धीरे उसका यह निश्चयापी 'स्व' अन्त में निरन्तर अन्त रूप हो जाता है ।

अहिंसा किसी मन्दिर में नहीं रहती । दुग्धी का हृदय ही उस का सच्चा मन्दिर है । आप के सामने काइ भूख मर रहा है । किसी माँ के नहें मुँह दूध के लिये चिनचिला रहे हैं । यदि आप सच्चे अहिंसा के पुत्राण हैं तो उस के दुःख निवृत्ति के लिये आप अपने हर सुख का प्रतिदान कर देंगे ।

अहिंसा ने ही संसार को 'जाओ और जाने दो' का पाठ पढ़ाया जिन्होंने सिराय निश्चरचा का कोई दूसरा उपाय नहीं ।

अहिंसा आत्मा का निज गुण है, क्योंकि जिस में जिसक पाणी में अपन जीवन के सुख शान्ति का एक उभरता हुई कामना मिलेगी आपको । भना क्यों ? इसलिये कि सुख आत्मा का निज गुण है । टीफ है, अब सुख आत्मा का निज गुण है ता क्या 'जाओ और जाने दो' या 'सुख से रहो और सुख से रहने दो' की शिक्षा का ज्योत बगाने वाला 'अहिंसा मिदान्त' आत्मा का निज गुण (स्वभाव) नहीं हो सकता ? अज्ञान ही सक्ता है । इस लिये आत्म धर्म या मनन धर्म प्राणो भग्न का अपना धर्म है । इस को लेना अथवा रौडों का धर्म कहना तो भूल ही है । इस के बिना तो मनुष्य जी हो नहा सकता । अहिंसा का विकास ही चरित्र का विकास है और चरित्र की पुर्णता ही अहिंसा का आर्थ है । अहिंसा आत्मा का स्वभाव है और स्वभाव को ही धर्म कहा जाता है अतः अहिंसा आत्मा का धर्म है । इस का अनुकरण ही हमारे चिरतन सुख का साधना है ।

संयम

मैं ने अपनी पुस्तक की पिछली पक्तियाँ म थाप को बताया कि सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है। धर्म यदि एक वृक्ष है तो अहिंसा उस का मूल है संयम और तप उस का दो शाखाएँ हैं जिस का मोक्ष का फल लगता है और आनन्द का पड़ता है उस म रस। बाद निरला हा इस रस का पान करता है। संयम और तप के बिना अहिंसा की रक्षा नहीं हो सक्ता क्योंकि अत्यमित मन, वाणी और इन्द्रिया उन्मत्त हो कर चंचल हो जाती हैं। यह चंचलता धारे धारे उन्मत्तता बन कर दुष्प्रवृत्तियाँ को जन्म देती है जिस से जीवन सिंहासक बनता है। अहिंसा यदि ग्रेत इरा मर है, तो कहना चाहिये कि संयम और तप उस ग्रेत की पाल है जिस के बिना ग्रेती सुरक्षित रह न सकता।

भगवान् धार स्वयं कह रहे हैं कि आत्मा का दमन करना चाहिये। आत्म दमन एक कठिन काय है। जो आत्म विजय की पराक्षा म उत्तीर्ण हो गया वह अग्निलेश की उपाधि से विभूषित हो गया समझो। अब आत्म दमन कैसे हो? इस के उत्तर म प्रभुवार की उक्ति भूलनी नहीं चाहिये नि-

पर मैं अप्या दन्तो

सपमेण तरेण य

आत्म दमन का यहो कुञ्जी है।

अब एक प्रश्न और उठ सकता है कि एक छोर तो कहा जाता है कि आत्मा का विकास करो और दूसरे छोर हमारे कथ कुहरा

में अल्प दमन की ध्वनि सुनाई दे रही है। विकृत और दमन दोनों परस्पर विरोधी हैं। जिसका विकास करना है उसका दमन कैसे हो सकेगा ? और जिस का दमन किया जाएगा उस का विकास कैसे होगा ? इस पहलू का जरा समझ लेना चाहिये।

आप को पता है कि जैन धर्म एक स्यादमती धर्म है। अपेक्षा बाद इस के दर्शन की आधार शिला है इनलिये अपना सिद्धान्त की दृष्टि से आत्माएँ आठ हैं। हमें केवल योग आत्मा और कर्मात्मा आत्मा का ही दमन करना है, जिन से चरित आत्मा दर्शन आत्मा और ज्ञान आत्मा का तो स्वतः ही विकास हो जायेगा इसलिये तापस्य और तप की आवश्यकता है। हमी से योग और कर्मात्मा का निरोध होगा, सभी अहिंसा का पालन सुचारु रूप से सकेगा और समता भी सभी मन के रंग मंच पर खड़ा हो सकेगा और कर्म की यत्नश्रम उठने ही दर्शन और ज्ञान को भाव नृत्तिया प्रकट होगा।

मुक्ति हर मन का सर्वोत्तम साध है। चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी। मुक्ति के संवरण के लिये मन, वाणी और शरीर का निरोध करना होगा। निरोध की भूमि है एकाग्रता, वह एकाग्रता सयम का ही मयुरफल है। इस एकाग्रता का अभ्यसन को बच्चा का खेल नहीं। यह एक महान कार्य है और मन वाणी और काया का कुत्सित प्रवृत्तियों को रोकने और श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को अपनाये बिना नहीं हो सकता। यह सयम आध्यात्मिक विकास के लिये तो अत्यन्त आवश्यक है ही किन्तु लौकिक उत्थान के लिये भी इस का नितान्त आवश्यकता है। इसके बिना जीवन निरा दुःखों का घर है। मनुष्य ने अपना मोहाधता से ही इन्द्रियों की चपलता में सुख मान रखा है। सयम हीन जीवन शक्तिहीन जीवन है। सभार में प्रायः वे ही लोग दुखी हैं जो वासना की दासता से जकड़े हुए हैं और जिन का मन वाणी और शरीर अपने घर में नहीं।

सयम की भी तीन घण्टें हैं जो मन लाख घन्टें लाख और

शरार लोभ म बहती हैं । सर्वप्रथम हम मन गमन पर कुछ प्रयास की शक्ति डालेंगे निग मे इसका विगुह स्वयं आप के मतिभ्रम में उतर सके ।

मन

मन स्वभाव मे ही चंचल है । सग वृद्ध ७ युद्ध उषेइ बुन किया हो करना है । अभी किया की दिन-चि-तना कर रहा है तो अभ, उसी का अदित चाहत लग गया है । अब कमा । कमा का उडारक है ता कभी क्रिया क, विनाशक । कमा अतापमूल के महासागर में गात भेदा है तो कमा गृणा क महाकाश में उडने लगता है । हा ! कितना चंचल है यह मन । कहां भा विभाति नहा । तथा तो ७

चंचल हि मन मृषण

कहा है । यही मन का असयम है जो सन दुर्गा और ज्ञेश का जड है ।

लोक प्राय कहा करते हैं कि यह मन तो बस में ही नहीं होता । करे क्या ? बहुत पूजा पाठ किया, किन्तु मन की यह ही चेतनी चल जा कि पहले थी । यह ही एक के तीन पात ।

यदि मन का विग्रह न हो सकता हाता तो हमारे महापुरुष इस के बसी करण का कभी उपदेश ही न करते । यदि मैं आप से कहू कि ७र लिये आकाश के फूल, शशक क सग लाखा और पानी से नयनात निफल कर जिलाओ ता आप कहेंगे कि आप की ये सप बातें अनर्गल है और प्रनाप मान है क्योंकि ये सब असम्भव हैं ।

महान आत्माएं असम्भव का अदेश वा उपदेश नहीं करता । उन्हीं ने मन का संयमित करने का अपने प्रवचन म सनेव किया है ये यह बात सिद्ध हा है कि मन का भयम हो सकता है और उा वीर आत्माओं ने स्वयं किया भा है कि तु उस क लिये उचिन और सभ्यक प्रयत्न की आवश्यकता है ।

आप अपना मन अपने हाथ में रखना चाहते हैं, श्रेष्ठ कामना है आप की। किन्तु यह भी बता दीजिये कि इस के लिये प्रयत्न कितना करते हैं आप। आप सत्यगिया की पक्ति में क्या कभी बा कर बैठे हैं। यदि बैठे हैं तो कितनी देर। और उधर रस और रस की दुनिया में आप विचरने ला नहा। यदि भूमते हैं तो कितनी देर। दोनों की तुलना करनी होगी आप को, जिस का पलड़ा भागे होगा उसी के वश में रहेगा यदि मन। आप देखेंगे कि इस जीवन का अधिकारा घड़िया वासना के पल्लो पर गुजरती है और केवल दो चार मण ही मत्सग और स्वास्थ्य शक्ति में लग कर सफल होते हगे। ऐसी दशा में मन अपने आप में कैसे रह सकता है भला। इस के लिये हमें एक लम्बी साधना करनी होगी। अपने अन्दर सुन्दर संस्कार भरने हगे। वासनाओं से लड़ना होगा और विकारों पर विजय पाती होगी। जिस को दूसरे शब्दा में संयम कहा जाता है।

आप कहते हैं कि पूजा पाठ और सामायिक आदि में भा मन चुप नहीं बैठता। कुछ न कुछ गुण गुणाठा रहता है सदा हा। प्रयत्न करने पर भी हाथ में निष्कलता आता है। इस पर यदि आप विचार करें तो पता चलेगा कि एक नहीं, अनेकों कामनाओं ने आपने मन को धुगे तरह घेरा हुआ है। हर वासना स्वयं प्रबल है, मन का अपनी ओर घगाटे लिये बा रगी है। आप अपनी ओर खींच कर मक्ति में उसे लगाना चाहते हैं। किन्तु आप की चरित्र तथा ज्ञान शक्ति हाती है निबल और उधर कामना शक्ति होता है सबल और वह चरम मन का मगा ले आती है और आप को उस के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं। मन हमारे बाबू से बाहर हा जाता है। हम लड़लड़ा करते हैं और अपने आप का अक्षय समझ कर हठारा हा कर बैठ जाते हैं। अपने अभ्यास को छोड़ कर आलस्य में पड़ कर आँसू बहाते रहते हैं।

अभ्यास से पहले कुछ वैराग्य का रंग माता मन पर चढ़ना चाहिये। तभी सा गाता में कृष्ण भगवान ने कहा

अभ्यासेन च कान्तेय ।

वैराग्येन च गृह्यते ।

वैराग्य के सम्मुख आसक्ति नदी टहर सकती। आसक्ति मन किसी व्यर्थ मकल्प विवलय का ताना-बाता नहीं बुनता। यह शान्त रह कर अपने भक्त अथवा ध्यान में लगा रहेगा जिस से माँ धीरे धीरे अपना आप का निराव करके मुक्ति के पास पहुँच सकता है।

वैराग्य के बिना कोई साधना पूरी नहीं होती।

जैसे कोई भी मयन नीच के बिना खड़ा नहीं रह सकता ठाक इसी तरह वैराग्य के बिना संयम का महल सुरक्षित नहीं रह सकता।

वैराग्य कोई खेल नहीं। यह अंतर में आगा हुई आत्मा की अमर विभूति है, यह उस का यह जीवन रख है जिस में यह सत् आनन्द में मूमा करता है जिस के सामने सोना और मिट्टी एक समान हो जाते हैं। राजा और रक का देर कर जिस का मन ऊँचा-नीचा नहीं होता। जिस के स मुख संसार के समग्र वैभव कोई मोल ही नहीं रखते। जीवन का राग और मृत्यु का भय जिस को कभी छताता नहीं। सचा वैराग्य तो वास्तव में उस का जीवन धन है। वैराग्य और रुचम की कुठारी से फलों के ताले तोड़ कर आत्मा की तिजोरी को खोला जाता है। यह वैराग्य सखा होता है और अन्तरात्मा की गहराइयों से उटता है इस का बाज रोग, शोक, दुःख और दमिदता आदि बाहर नहीं रहते बल्कि इल का बीज है शां और वह रहता है आत्मा में। ध्यान का उदय होते ही मिथ्यात्व का अधकार उठने लगता है। सत्यासत्य और नित्यनित्य का समझने में कुछ देर नहीं लगती। मनुष्य नरवर मुक्तों को असार समझने

लगता है जिस से विश्व के अखिल मन भेदक पशुओं की आशक्ति जाती रहता है और उस अनाशक्ति के गर्भ से वैराग्य का जन्म होता है फिर उस का सहायक संयम उत्पन्न होता है । वैराग्य और संयम मिल कर कर्मों को पट्टाड़ कर आत्मा को मुक्त कराने में सफल हो जाने हैं । ज्ञान गर्भित वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है—एक उदाहरण लाजिये—

आप के सामने एक घाल परोसा गया है । घाल लुभावना है यह स्वाना आप के मूँह में पानी भरता जा रहा है देख देख कर । खाने के लिये आप सालावित हो रहे हैं । हाथ आप का आगे बढ़ रहा है । इतने में आप क्या देखने हैं कि एक नौकर दीडा आता है और चिन्ताता आ रहा है कि भोजन मत खाओ, मत खाओ । आप सोचते हैं कि इतना बढिया स्वाना है और यह कह रहा है 'मत खाओ' 'अरे क्या बात है ? अन्नो व्यञ्जन का देगर्ची में से मरा साप निकला है, साप । आप ने भोजन बरी छोड़ दिया और मारे घृणा के उठ खड़े हुए, अब आप का मन उस भोजन को देखना भी नहीं चाहता । ऐसा क्या ? इसी लिये कि पहले आप को साप की गिप का ज्ञान न था । इस लिये आप देख देख कर फूले नहीं समाते थे और उसे पेट में उडेलने के लिये मूँह बा रहे थे । अब आप को मरे साप का ज्ञान हा गया है अतः आप अब नाक खिंटाइते हैं और उसे फूटी शॉल देखना नहीं चाहते ।

ठीक इसी तरह दुनिया के भागों में मनुष्य तभी तक रचा-पचा रहता है जब तक उस का ज्ञान न हो और यह बोध न जान पड़े कि भोगों की पिढारी में दुःख, शोक चिन्ता और मृत्यु के काले नाग छिपे हुए हैं और अनादि काल से इन के डंका से संपादित होते आ रहे हैं हम । ज्ञान होने ही वह वासना की पिढारी फेंक देता है और सच्चे वैराग्य का ज्योति ले कर अपने वासन का ज्योतिर्मय बना कर धन्य होता है ।

शात भिन्नता है मर्ममग और साधनमग । मर्ममग में हृत् मनुष्य, मित्रित हा या अशिक्षित, अरना जाया भाभी शान के मर्तिया से भर गकता है । बहूा से मूढ़ अरना समय कुर्मग में गने रहने है, किन्तु मर्ममग म अने से अरत है जैसे कि साधन कई अशुद्ध क्य योग हा । व्यर्थ का समय यदा मभी लगती है इनको, किन्तु शान की बातें सुनने से मग ग जाने इतना बर्ष कतघता है ।

कोई तारा और सतर्ज पर जा बैठा तो सारी रात गुज्र जायेगा किन्तु क्या मजाल कि साधन का मन ऊब जाए । कोई बैठा हुआ वा रहा है, काइ चाय पर टटा हुआ है तो कोई चाय की कमाइ भूये म उका रहा है । कोई सिनेमा की शोर मीदा जा गया है तो कोई पर म हो रोटिफ पर गीत का प्रकाश सुा रहा है किन्तु सर्मग का ताग सुाने हा मूढ़ा या जाता है । फिर कदा जाता है अजी क्या रगा है क्या सर्मग म । जा उपदेश सुता है मना उन्हो ने क्या बना लिया है ? तर्मग में क्या लाभ, परि मग शुद्ध न हा । देगा है मैं ने अमुक मक्त को जाने है क्या सुाने स्यातक में और मन्त्रि में, और काते है लागी की भाई दुकान पर । एमे भक्त में तो हम सर्मग से कार हा अन्धे ज. दूर्य के मल तो गरी काते फिरते । सब से परने तो अरना मन शुद्ध होना चाहिये तभी मर्ममग में लाभ है । किन्तु एमे लागी से पूटना चाहिये कि मग शुद्ध कैसे होगा ? पर बैठे बैठे ही आप शुद्धि के सिस्वर पर जा चढ़ेमे क्या ? मुझे एक छोटी सी बात की स्पृति आ गई है और उस में निम्ने ही देखा हूँ यश । एक मनुष्य तैरने की कला सीखता चाहता था । उद एक नदी पर गया और नदि में उतर गया, लगा जाने पर गने लगे । धनए कर बाहर आ कर किनारे पर गया हा गया और कही लगा कि जब तक मैं तैरना ग साग लूंगा तब तक गग पर पैर भी न स्पृगा । अजी मगहये कि तैरना कहा सांगाने भला ? क्या

पृथ्वी पर * टाक रहा हल मेरे उन भाइयों का है वा मन शुद्ध होने
 कदम सस्रग में बना चाहते हैं ।

स्वास्थ्य भी ग्रामा का एक व्याजम है जिस से न कमल
 बुद्धि न शक्तिशालिन बनती है जबकि ग्रामा मा परिपुष्ट होता
 है । सूर्य जैन कमल का पखुड़िये स्थान देना है एते स्वास्थ्य ने
 ग्रामा स्थित उठता है । सून उत्तमग्रामन में प्रभु गौतम ने
 भावन बार के चरणों म एक प्रश्न भी उपस्थित किया है, देव ।
 स्वास्थ्य म क्या लाभ । भगवान ने परिपूर्ण वर्षा, कि, शिष्य ।
 स्वास्थ्य शन के आदर्श को उठाला है । श्रीर जीवन में सद्
 उन न आनाक विन्दे कर उते एक आदर्श बना देता है । किन्तु
 आनंदी युग हा पलट गया है । हर ह्यद्य-वग नावल म शीकान
 हा गया है, माना नावल उन का रमं भाष हा । प्रमा श्रीर प्रेमिका
 का प्रेम कहान पढ़ने म उहा आनन्द लता है किन्तु हान के भरे
 मंगपुष्पा के उपदेश उन को नहा माने, धन पुस्तकें अलम रियों में
 पडा सड़ रही हैं श्रीर काहों का आदर्श बन रही हैं, कई उन की
 देव मान करने वाला मा नवर नश आना । पार्चात्य विद्वानों की
 रचनाएँ अन्त रचि से पही जाता है श्रीर हर काइ प्लेदा श्रीर
 मुकरत का नाम ले कर पूजा न समाता । कटस, उडसवध
 श्रीर शैकसवार के नाम इन भरताय युमक युमतिशा के जिहा पर
 रहने हैं श्रीर अपने वार्तालाप में न भाषन श्रीर लेगा म उन की
 उक्तिओं क संकेत दे कर अया । मफलता श्रीर योग्यता को नाप करत
 हैं । उन की दृष्टि में उन न विचार महन, उत्तम, श्रीर पूर्ण हैं ।
 अपने मन्वृति और सम्पत्ता का तो उन्हें कुछ शोभ ही नहा होता ।
 अपने देश की आदर्श विभूतिशा की आदर्श जउन भाकिता कभा
 उहा ने देखी हा नहीं । उन के महान शन के जगत म कभी
 प्रवेश ही नहीं किश, वेगो श्रीर उपनिषदा क पन्ने उलटा कर हमारे

भारतीय वार्ता ने उन के रहस्य को बर समझ और चौक धारणा की पिढारी का टकना उन्हा ने बर उढाया है । जैन आगर्मा के विशाल रागर म पड़े शा के मोतिया को हमारे देश के सुयोग्य तदणु तदणियों ने बर हूदा है । यन्ि एक बार मी हम ने अपने ज्ञान के महोत्सव में गदरे उतरा हाता तो हम अपने भारतीय दर्शणों के उपहास का पाप एकत्र न करते । और विदेशी जदवादियों के दचनों पर हमारी आम्था न होती और यूँही डा फ गलों में प्रशंसा का मानाए न पहाइ जाता । बवल जद तक हा उन की दौद है न । 'वाओ पात्रा और मौज उडाओ' ही उनरे जीवन का मूल मंत्र है न । फर्म और आत्मा के शब्द हैं पहाँ उन के विचार फेश में । सत्य, शिव और सद्' का ता उन बद वादिर्ण को स्वप्न भी न आया हागा । आप्यात्मिकता का शब्द ता उन के काना ने कभी सुना ही नहीं । डा के काया का वायुगन उड रहा है भौतिकता के आकाश म ।

माना कि विज्ञान ने चहुँमुखी उन्नति की है और बर मी रहा है । इस का चमक ने संसार को चकाचौंध कर लिया है । मनुष्य ने पत्तिर्ण की तरह आकाश में उड़ना सार लिया है और मल्लू की मान्ति समुद्र में तैरना भी सीखा है । इस मनुष्य ने सब कुछ सीग लिया किन्तु हा ! इस ने प्रेम-व्यार से धरती पर शांति से रहना न साखा । आज बह वैज्ञानिक युग का जन्तु है । एक दूसरे के विनाश के साधन जुगन म और नयोन नवीन अनुसंधान करने में दिन रात एक कर रहा है किन्तु अपने आप को रोजने का उस के पास एक मिनट का अवकाश नहीं । याद रहे, विश्व का रीढ़ चारित्र है, विज्ञान नहीं । माना कि विज्ञान संसार को जीवन की हर सुविधा प्रदान करता है उसे लौकिक सुखों से भरपूर करता है किन्तु कभी कभी वह ही विज्ञान संसार को सारो नर-मुण्डों की माला भी पहना देता है ।

नैतिक उन्नति अच्छी है किन्तु चरित्र के बिना उस का कुछ मूल्य नहीं है। चरित्र हीन विज्ञान एक सँझार है। जड़वादी चरित्र और उसके विकास को क्या जानेंगे भला ! धार्मिकता के बिना चरित्र का बम नहीं होता। धार्मिकता पनपगी धर्म को पहचानने से। धर्म क्या है ?

अहिंसा समयो तरो

बस, यही सच्चा मनुष्य का नैसर्गिक धर्म है और जिस पुस्तक में हमें इस की मूल्यक मिले वस वह ही पठनीय और मननाय पुस्तक या ग्रन्थ समझना चाहिये और उसी का पठन-पाठन और परिचालन सच्चा ध्यानाय कदा जाएगा, शास्त्र में क्या भी है

ज सोच्चा पठिनञ्जति

तत्र सुति महिसय

मैं यह नहीं कहता कि अन्धकारियों को पढ़ना नहीं चाहिये। मगर अभिप्राय क्या है इतना ही है कि दूसरों के घर का शान करने हुए या करने से पहले अपने म. घर का शान कर लेना चाहिये। तभी हम तुलनात्मक अध्यायन कर सकेंगे और दोनों को अच्छाई और बुराई का हमें भला भाति पता चल जाएगा। विष रोग हथ है और अमृत है उपादय।

हमें तो गुणधित पूज्य चाहिये चाहे वह अपने काम का हो चाहे दूसरे के काम का। हमें तो मधुर पेय जल चाहिये चाहे वह अपने कुएँ का हो चाहे अन्य के। हमें तो अहिंसा गयम आरतप से मंत्रा हुआ उज्ज्वल और पुनीत चरित्र चाहिये। उस की शिक्षा अन्धकारियों या भारतीय चाहे किसी भी पुत्रक व ग्रन्थ से मिलने हमारे लिये तो वह ही स्वाध्यायग्रन्थ है। हमें चाहिये कि हम व्यर्थ अँध-अँध पुस्तकें न पढ़ा करें और अपने

सुख श्रेष्ठ पुस्तकों के अवादन में लगाए जिन से सच्चा ज्ञान ले कर हम अनामक भाव से दुनिया में रह सकें और अपने मन को समित करने के लिये अभ्यास किया जा सके ।

अभ्यास से ही मनुष्य अपूर्ण से पूर्ण बनता है पहले पहल जब एक वाक्य अपने न हो मुझे हाथ में लेना पड़ कर तपती पर निरता है तो वह विचार अपने म्याइ के अन्तर बना नहीं सकता, यही टेका वेड़ी लकारों साचता रहता है । धारे धारे अभ्यास में उस का हाथ छुप का भी मात करने लगता है । यह चमत्कार किस का ? केवल अभ्यास का ।

एक कलाकार चित्र बनाने में एकत्र ही प्रयास नहीं हो जाता । प्रतियोगिता का अभ्यास उस की कृति का अङ्ग में जान डालने में प्रयत्न बना देता है ।

सांस्कृतिक एक दिन में नई सीमा जाना है इस के लिये अभ्यास करना होता है । एक दिन का भी आता है जब वह अपने सादकल पर असर होता है । उस का एक लोग भाई आगे बैठा है वहिन उसकी पीछे कैरियन पर नैटी हुई है । उस के दो नन्हे मुँहे उस के दाएँ-बाएँ कर्णों पर चढ़े बैठे हैं और उस शेर अम्बार ने अपने दोनों हाथों से हैंडल को आजाद कर रखा है किन्तु फिर भी वह भाङ्ग भरे आजार से साफ बच कर निकल जाता है । यदि देखा जाये तो वह अभ्यास का ही फल है ।

हर कार्य की मफलता और सिद्धि का अभ्यास मूल है किन्तु अभ्यास नियमित होना चाहिये । यदि उस में विषय न पड़े फिर ता हम एक एक दिन अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँगा ।

मन को साधने का सा अभ्यास करना होगा ! कहा जाता है कि मन पवन और देवता से भी अधिक चलता है । योता में

‘वायोन्वि सुदुष्करम्’ कह कर इस की चंचलता का दिग्दर्शन कराया गया है।

एक मिनट के लिये ख्याल कीजिये कि आप एक देवता का वश में करना चाहते हैं आप अपना मन्त्र पढ़ते हैं तो क्या उस दम वह देव आप के चरणों में उपस्थित हो जाता है ? नहीं उस के लिये निरंतर प्रयत्न करना पड़ता है। कई वर्ष बीत जाते हैं फिर भी उस की सिद्धि भयंकर बनी ही रहती है। मन का देवता तो उस से भी अधिक वेगवान है फिर वह एक नरकार से ही आपने अपनी कैवली हो जाए, उस के लिए आप को दार्ढ्य अभ्यास करना होगा। अपने अभ्यास के लिये किसी भी मात्र का आश्रय लिया जा सकता है। मन संयम के पश्चात् अब कुछ वाणी के समय का व्याख्या के रंग में उगने का प्रयत्न किया जाएगा।

बाणी

वैसे तो मन ने निग्रह से ही बाणी और शरीर का नियंत्रण हो जाता है क्योंकि मन एक वेद्र है यदि नदि के वेद्र से कोई विचार तरङ्ग ग उठे तो उसका तरङ्ग चक्र घन कर किनारों तक नहीं पहुँच सकता। मन का विचार ही आगे बढ़ कर बाणी और शरीर द्वारा कर्म के साँचे में ढलता देखा जाता है। किंतु फिर भी इन के संयम का कोई उपाय तो होना ही चाहिए। यदि अपनी बाणी और शरीर का संयम से साध लिया जाये तो हमारा मन भले ही कुछ देर के लिये उड़ता फिरे किंतु आप देखेंगे कि वह बिनाश अपने आप में आप सीमित हो जायेगा और धारे धारे उस की सरूप-विकल्प की पाँवें भङ्ग जायेंगी और उस की उड़ान स्वतः बंद हो जायेगी। अपने मन का वचन-लोक और काय-लोक में आने से रोकने के लिये संयम से काम लेना होगा।

लोग अपनी बाणी को अपने काष् म नहीं रखते। व्यर्थ की बातचीत में लगे रहना और निष्प्रयोजन और अट संट बातों में समय ग्लाना मानों अपने लिये अनर्थों का निमंत्रण देना है। हमारे पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय ह्वेशा, ह्वेदा और उपद्रवों का बहुत बड़ा कारण हमारा बाणी का असंयम है। किन्तु हम इन बातों का ध्यान कर ग्यते हैं। यही दूसरों पर बज्र गिराते रहते हैं हम। हमारे वचन-बाण भी तो अग्नि बाण हैं। दूसरों के जीवन में आग लगा देते हैं। छोटी सा बात पर महा मारत छिड़ जाता है। दो हच को छोटी सी बरान छड़ फुट के आदमी का मार देती है।

जो लोग धोने की कला जानते हैं वह अपने शत्रुओं को भी
 धाना मीठ बना लेते हैं और जनता के हृदयों पर छा जाते हैं।
 हमारा वाणी विचार की दुआ पर तुने बिने जय निकल जाती है ता
 यह जीवन जगत को क्रोश का संग्रहा बना देती है। "पहले तोलो
 फिर बोलो" की लोकात्तिक धीमानों के मतिक का पदली विचारणा है।

कई तो बड़े पके सत्यवादी होते हैं। वे कहा करते हैं कि
 'अग्नि हम तो मच सच कह देते हैं चाहे बिने की बुय हो लगे।
 हमें नर्दा आता झूठ बोलना। हम तो माफ साफ कहते हैं और ९६
 पर कहते हैं, जिस ने झो करना हो करले' ऐमे सत्यवादी असल में
 सत्य से बहुत दूर होने हैं। वे तो केवल सत्य की आक ले कर दूसरा
 का अपमान करने हैं और अपनी इर्था अग्नि से जलने दिल को टण्डा
 करने का प्रयत्न करते हैं। वह स्वयं झूठा वे शिरामणि हुआ करते हैं
 और उन का हर बात दम्भ और केपट भरी होती है।

सत्य को उपभ्रियत करने का भी एक दंग हाता है। सत्य कहते
 हुए अपनी मानवता और मभ्यता का जनाजा नहीं निकाला जा
 सकता कलहकारिणी वाणी का सम्मान नर्दा किया जा सकता।
 सरलता, विन तता और मधुरता मनुष्य के बचन का अनमाल भूषण
 है। इन के बिना इस की शोभा नर्दा। इस विषय पर एक उदाहरण
 उपस्थित किया जाता है। किसी नगर का एक नरेश था। था बहा
 प्रतापी और अपनी प्रजा का सच्चा हित चिन्तक। उसे विज्ञा और
 विद्वानों से विशेष प्रेम था। वह स्वयं भा विभिन्न विद्याशा में निष्णात
 था। उसे परिष्कार से ज्ञान चचा करने में आनन्द आता था। उस
 की राजप्रमा भी विद्वान मंत्रिर्था का एक सग्न था। एक दिन उस
 ने यूही विना में किसी म प्रा मे पूछ लिया, मन्त्री वर। 'देवता
 कौन सा अर्धों। पल कौन सा भेट। पून कौन सा बद्धि और

मिठास किस की अच्छी ?' मन्त्री ने भट्ट उत्तर देते हुए कहा—
 'प्रज्ञानाथ ! मेघमाली वैरता सब से अच्छी होता है । फल पुत्र का,
 फूल कपान का और मिठास सब से अच्छी होती है अज्ञान की !
 राज प्रसन्न हो गये और उस की बुद्धि का समझना करने लगे ।

बन्धुवर ! हमें मा चाहिए कि हम अपनी वाणी में मिठास
 मरने की चेष्टा करें । मीठी वाणी के साथ साथ मन भी मीठा होगा
 चाहिए, यदि ऐसा न हो सकेगा तो 'त्रिपट्टु मन्त्रोन्मत्त' वाला बात मन
 बायेगी ।

बहुत से लोग अपना स्वार्थ निकालने के लिये मधुरभाषी बन
 जाते हैं । ठग भा मधुर मधुर बोलने में निपुण होते हैं क्योंकि कदा
 जाता है कि—

प्रियवक्त्रा भवति धूर्त्तजनः

इस का अर्थ कभी यह न समझ लेना चाहिए कि सभी प्रियवक्त्रा धूर्त्त
 होते हैं बल्कि धूर्त्त लोग प्रायः प्रियभाषी होते हैं, आप यदि रतिये
 कि यह मधुभाषिता उन के जीवन का गुण नहीं समझ जायेगा
 इस का अतिम परिणाम जन समाज के लिये नितान्त अहितकर
 होता है । उन के यह माटे और मन भावन बाल विचारे भाले भालों
 को सुभा लेते हैं और यह उन के भावने में आबर सब कुछ छुटा
 बैठते हैं । अतः बचन सरलता के साथ साथ मन का सरलता अवश्य
 रहना चाहिये । दुष्प्रवृत्तियों का और से रोक कर वाणी को
 सद्प्रवृत्तियों में लगाना यह समय का प्रथम पग है । धारे धारे उसे
 मौन की ओर मोड़ना चाहिये ।

सहनशालता के बिना वह वाक-संयम कठिन ही है । आज

एक मीन मछलियों का निवास विवाले हुए हैं। यही तो कारण है कि हर पर कुछ मीन बाध हुआ है। एक दूसरे को बाध का फटाका है। परस्पर बाधा का कारण बनकर जाते हैं। इस तरह परिवर्तन, सत्त्व और गुण का मध्य साधारण स्थिति हो गया है जिसमें प्रिय नये नये भगवद् उद्धार हो रहा है। कारण व निष्कर्ष में ही मछलियों का अन्त हो गया है। निम्न उद्धारण एव ही और भी स्पष्ट करेगा—

एक बार एक मछली सब परकी वर प्राण मुक्तता में नैर मे गई तो ना न हुआ, बरत।—'वो ही मुझे अन्तहार का अर्थ था है न, वही मुक्तता में हुआ तो गीत मुक्त का। वही वरत — माँ और एक मछली के हैं। दूध, जल और समुद्र सब मर चुकते हैं और पति मय ही नियुक्त नया भवभाव है। उद्योगों का दाता दुर्जन का बुद्धि पण का गीत। यह त मर जाया का कठपुतली है। और सब मुक्तता है किन्तु मय कायु मुक्त विभवुक्त नदी मुक्ति को न उठे मैं ही भाग हूँ। जगत् बरत का बाध पर पूरी लगन है और फिर वही बुद्धि बुद्ध करती रहती है। यदि मैं कभी उत्तर द रत, हूँ तो काच में लक्ष्मी का ही कर शार मुक्तता लगती है। जो मुझे में छाया है, वह छाया है। यह छाया हर पर उठ जाता है। यह छाया छाया अग्नि निष्कर्ष वर मय और दगत है, मुक्तता पर लगन लगता है मया छाया मुक्तता आवता। दैवता भी भगवत की वर पूजा करती है, निव मन्दर जाता है। मध्य में सब म अग्नि। किन्तु अन्त प्रका निष्कर्ष, का दूसरे व तन मय में छाया लग दे। मैं तो उद्योग काय मे दुर्गा का गद् हूँ माँ। अर्थात् पुत्र की सब अन्त मुक्त कर उद्योग की मया ने वर। 'व्या विन्ता न कर। मैं तुम्हें एक ऐसा मय दगा हूँ जिसमें फिर कभी तुम्हारे पर में एव मैं मैं न ही और पर में छाया नहीं रहे। यह कह कर पर भ

मीनर गर और लफडा का एक छोटा सा गाछ मुपय दुका उत्र
 लार् और अपना लकरी के सामने आ कर उग । अपना छोटे
 मूँद ली । दा पार पार मूँदा भूट मूट मय पदा और उल काट के
 दुनड़े पर हर बार पू क धारता रहा । अपना बरिषम गनात करने
 क बाद हा वह अपना पुत्रा से बोला 'लो यद मय । मय
 लुधारी काय मुन्द कदे गुो, मय हम तेरे मात्र को दागो लने दना
 कर बैठ जाना । जब तक य धोवती रहे, तब तक यद टातो के नीचे
 रहे । निकलो न पावे । य यद दान्तों मे लूट गया कदा, ता यद
 इस का कल कुछ भा १ होगा । मुदय यद योश कभी शान्त १
 हो सरेगा ।

यद उस मय को लेकर मुकराल चला गई और एक दो गि
 के बाड हा दाना मे ठन गई । यद ने अपना मय निकाला और
 उमे दाना से दवा कर बैठ गई । उग का काग बोनी चली गई ।
 किन्तु यधर से कोई उतरा नहीं आ रहा था । लड़े तो दिव से लड़े ।
 अत मे उमे मुर दाना पका । अयोस-पकोस के लोग कदने लगे
 'देता, यद बहु पिचार बालतो तक १, और यद चुकेल मूँदी मक मक
 करती जा रही है । १ जाओ, हम ने लकरी को ट्रेनिग कदा से लां है ।
 निम्कारण हा लक रही है । कुनदान के यती लक्षण हेते है । इस के
 मा माय मी पेमे हो होंगे । बोलते क्या लजा नरी आता इसे ।' तब
 इस तरह उस की निन्हा करने लगे । और उस का मूँद को मला
 कही लगे । उस की कायू ने देखा कि मेरी ता मुगई हो रहा है
 और इस की हो रहा है मयंका । मैं बुरी क्यों बनें । धारे धारे उस
 ने मा लकना छोड़ दिया । धर म अद शान्ति रहा लगी ।

उपरोक्त दृष्टान्त हमें सहन शीलता और मौन रहने की क्या
 शिक्षता है । यात्री के घाव मदे धरे होते है । इन से बर श्रुता

है। बैर में दिग्ग और दिग्ग म पाव होगा है।

मगहन महर्षि र वा प्रवचना भी यदा है—

बापादुरुचागि दुरुद्धरागि

वेगणु घषागि महम्मयागि

यनु जगत् रहे है कि मर्मिक यजन अदे अनर्षे क उ दात है इन
 वा दार्य में निहलना कठिन हुआ कारण है इन में हा उरुग दुर्गो
 वा कम होता है। हर प्रणाली को अन्तः प्रमन-रुक्ति क प्रवेण में
 संभन म कान मना पा दये और हर वात विवेक के कटि पर मुन
 कर निहलनी कारिने। तथा हम कारिना क मुख्य पुष्पा चन कर
 समंहर वा सुवेग।



शरीर

बाक संयम के बाद हमें अब शरीर नियंत्रण पर भी कुछ विचार करना है क्योंकि मन और वाणी की तरह शरीर भी एक महान कर्म योग है। मन के भाव का मूर्तरूप तो शरीर ही देता है न। मन में तो अनंत विचार-लहरिया उठता है, यदि शरीर उन का साधन देता उन को व्यनहारिक रूप नहीं मिल सकता और हम तरह जीवन बुरे कर्म के मचड़ में गिरने से बच सकता है।

यह शरीर दूँही नष्ट मिला। पुण्यदय से हा हाथ लगा है यह धनमोल रख। अनेक बातें पार करनी पड़ी हैं इस के लिए। पहले भां कद बार यह शरीर हम को मिल चुका है कि तु यह सफलता की पगटण्टी पर न चढ़ सका क्योंकि इसे समय की डारी से चाना न गया, यदि बाधा भी तो कच्चे धागे से। आप को यह दुर्लभ शरीर फिर मिला है, जो धर्म का सब से पहला साधन है, क्या भा है—

शरीरमाद्यम् सलु धर्मसाधनम्

यह वह शरीर है जिग का पा कर मनुष्य आत्म-साधना करता है और धीरे धीरे अपने लिये परम-धाम के आनन्दमय द्वार खोल लेता है। किन्तु स्मरण रहे कि अब जीवन शक्तिया उमार्ग गामिनी हो जाती हैं तो यह शरीर उसे धार सातवां नरक में भी पहुँचा देता है, जहाँ सिद्ध और साप भी मर कर नहीं जा सकते। मनुष्य के लिए यह मोक्ष द्वार भा है। इस का सदुपयोग और दुरुपयोग उस के अपने हाथ में है। उस का एक मुँह में स्वर्ग और दूसरी में नरक है। यह

इन बचन में सब कुछ पा सकता है और सब कुछ सा करता है। वह मनुष्य अपना आप मित्र और अपना आप शत्रु है। इसे अपने शरीर का सभम म रखना चाहिये। इसी में इस का हित है।

जो लोग अपने स्थूल शरीर का ही जग में नहीं रख सकते, अपने आप का अपकृत्या से परे रख नहीं सकते, वह मग मन और जगो का नियमन कर्ष करेंगे। यदि आप इन गने को रोक नहीं पाते तो कम से कम आप का अपने शरीर पर पूरा पूरा अधिकार होना चाहिये, आप को अपनी समस्त शक्तों का स्तन होना चाहिये। किन्तु यहाँ तो उलटा ही रंगा छ है। आप का शरीर इन्द्रिय आप पर असत्तर रहता है और आप का शरीर को दारी से बाध कर स्थान स्थान पर बानर की तरह घुमाती है। आप का शरीर आपसे नै नादर होकर बँद बंद कर्ष करता रहता है और हर घड़ी अपने लिये एक बर्ष तक शक्ति है और उस में स्वय ही बँदा बन कर कर्ष करता है।

शरीर का यदि निरोध न हो सके तो इस कर्षण में नै लगाया जा सकता है न। यदि कोई प्राणा गिन साता। नै शक्ति से पकड़ कर उठाया जा सकता है। किन्तु इन्द्रिय नै शक्ति बग हस्त फेर फेर उसके ब्रॉसू पाँडे जा सकता है।

किसी कृते हुए को बचाया जा सकता है। नै सेवा से तुम्हारे हाथ पुण्य का सचय करण। नै पानी का घूट पिलाने और भूने को शत्रु बँदा नै से तुम्हारे हाथों को वश की मददी लग सकती है। नै अनभोल अंगुठियों से यह हाथ आप कर्ष कर सकता है।

यह पाशो भी आप के क्या कर्षण कर सकता है। नै

दुनिया के पास पहुँच कर उनकी खबर-खार ले सकते हैं। आप के कम सतमंग के अधाह समुद्र से ज्ञान के त्रिज्य म'ती हूँट कर ला सकते हैं। आप के ये दो पग रिमा मां, बरिह की सुन्ती लाज को दौड़ कर बचा सकते हैं, जग हित के और भा हँकड़ो काम किये जा सकते हैं।

आज के लाग मूर्ख बने फिरते हैं और अपने शरीर और इन्द्रिया का दुष्यपयोग कर रहे हैं।

आप के हाथ दुसरो का धा ररते और किमी का सतौत लूटने में बड़े चतुर हैं। किता निर्मल की भार जुटाई करने में आप क हाथ कई कारकधर नका नश रपने। कम तोलने कम मापने और लरे म एोट मिलाने में आप के हाथ कभा संकोच करते हैं। झूठे लोग लिखने में भी ये कब पीछे रहते हैं। धूस देने और लेने में आप के हाथ कब शरमत हैं। रिचारे पड्रिया को गोभी का गिराना बनाने और बेजवान पशुत्रा का गरदने उकाने म आप के हाथ कब भरैत हैं भला ?

अब अपने पश्चात्ती कशानी भी सुनिये ! वूँही गली घाजारो को नापते फिर रहे हैं। वहीं छिनेमा के और कहां बेरयालय के चक्कर काटे जा रहे हैं। मधुशाला की ओर भागे मागे जा रहे हैं। खोल तमाशे की ओर वूँही लपक पड़ते हैं। इतने चंचल हैं आप के दो कदम इहें जग सदकार्यो में लगाइये और इसे धारे धारे संयम की अजररो से बांधिये।

भगवान महान र सच पूछो तो संयम की मूर्त्ति से, उन्हां ने इमी संयम की शक्ति से ही आत्म शान्ति प्राप्त की। भगवान से एक बार उन के शिष्य गौतम ने पूछा था कि भगवान

कहँ चरे

भगवान ने उत्तर दिया, गौतम !

जय चरे

इस श्लोक में वे हमारे देवाधिदेव ने हमें अपनी समस्त क्रियाओं को संयम की सीमाओं में रखने का आदेश दिया है। शास्त्र में एक उक्ति है—

कम्महा मयंम जोगसंती

कर्म का ईर्ष्य और संयम को शान्ति पाठ माना गया है। या यों कहिये कि संयम ही शान्ति का मूल मन्त्र है।

यहां पर इन्द्रिया के चारे में भी दो विचार कर लेने चाहिये। हमारा इन्द्रिया प्रिलास-भूमि में क्रीडा करने के लिये भागी जाना है। वरा हमें भी संयम की रस्ती से कस कर बाध टाजिये। आप अपने कानों का मते बुरे शब्दों से परे रविये। उन्हें अपने अन्दर राग और द्वेष का बज न चोन दें। रूप रंग के फूलों पर आप का अँखि मडराने के लिये दीड़ी जा रही है तो जरा हमें रोकने का कष्ट तो उठाइये। इन तरह अपनी हर इन्द्रिय को अपने आप में रन्धित ता सगु अक्षय सुख निधि आप के साथ रहेगा।



तप

मयम पर दा चार पक्तिगा लिखने के पश्चात् अम हम तप की आर चलते हैं । यह मो धर्म का तीसरा महान अंग है । वास्तव म दया जाये ता तप, मयम और अहिमा तीनों दा परस्पर स्नेह पूव में ब ये हुए हैं । नप क जिना संयम का रत्न नही हा सक्ता और बिना संयम क अहिमा भगस्तो का आराधना हा नही सकना । जिस क अपने मन, वचन और इन्द्रिया पर पूव अधिकार होगा वह दूसरा की हिमा क्यावर कर सकते हैं । जहा अहिमा रहेगा वहा संयम और तप भी रहेगा हा । ये ताना ही एक दूसरे के सादापक एतंपूरक है । इस निमूर्ति का नाम ही धर्म है । जिम के मय के सिद्धासन पर यह विराजमान हो गह ही धर्मांतरा है और वह हा महात्मा है । आगे चल कर वह हा परमात्मा दागा ।

इच्छा निराध वा नाम ही 'तप' है । इच्छा ही ज्ञान का अधूरापन है । यह मनुष्य को पूर्णता की आर अदखर दर्श दान देता । एक इच्छा प्रभा समाप्त नही होने पाता कि अनेक और उठ लड़ी होता है । इच्छा का एक चक्र सा चल पड़ता है जिस के अंगुल से निकलना हा कठिन हा जाता है । तप इच्छा पर एक प्रतिबंध है इस क जिना इच्छा उपशान्त नही हा सकती । मनुष्य के चारों आर कामनाओं का एक जल निद्रा हुआ है और उस म पसा महना की तरह तक्षता रहता है । बाल्यकाल से ले कर अन्तिम समय तक यह कामनाओं का ताना बाना बुनता रहता है । मरने के बाद भा इच्छा इस को बहा छोड़ता है । यह ता इस के साथ परलोक में भी जाती है । गति-परिवर्तन का आरिज मूल तो यही हैं । दुःख सुख का भूला

ता बनी मुक्तता है। इच्छा ही इन्सान और भगवान के बीच का पराग है यदि यह उठ जाये तो इन्सान और भगवान एक हो जायें। सभी ता कदा है—

God + Passion = Man

Man — Passion = God

मनुष्य युगा युगा से सोऽह को रट लगाता चला आ रहा है किन्तु तप के बिना यह उक्ति भा संय नई हो सकती क्योंकि इच्छा-निग्रह बिना तप के असम्भव है। भगवान महावीर ने इसे तीसरे स्थान पर रख कर इस बात को सूचना दी है कि इस क बिना संयम और अहिंसा का पालन नही हो सकता है।

तप क्या है ? इस बात को समझ लेना चाहिये क्योंकि बहुत से लोग बिना सोचे समझे इस के साथ चिपटे रहते हैं। पिय से उन्हें यथातः लाभ नहीं हो पाता।

कवन भूये रहने का नाम ही तप नहीं बहुत से महानुभाव अपने शरीर को भूय से मुक्त कर काटा गया देने में अपना गौरव समझते हैं। अपने आप को बड़े तपस्वी मान कर फूले नहीं उमाते। अर्द्धाश्रित, शरीर शोषण का नाम ही तप नहीं है इस क साथ साथ मन क अपमान विचारों का भा ता शोषण होना चाहिये। सभी तो आत्मा का पोषण हागा ना इधर मारे भूय न प्राण निकल रहे हैं, शरीर दुबला पतला होता जा रहा है। उबर काथ लाभ, मत्, अहंकार आदि कुत्सित भाव और अधिक उभर रहे हैं। बात बात पर अँखि लाल करते हैं। दूसरों का धन बगारने में दिन रात लगे रहते हैं। यदि कोई विचार भ्रान्ती पसार कर भागने आ जाये तार पर, ता उठे सौ सौ गलिया मुन्दा जयेंगी। दूसरों का

अग्निमान तो एक चुटकी भ ही कर देते हैं। प्रताड़ये ऐसे लोगों का तप भला क्या रंग लायेगा ? तप किया जाता है आत्म शान्ति के लिये यदि वह शान्ति ही न मिला तो ऐसा तप किस फाम का ? शान्ति ही तप का आभा है। तप शान्ति का एक महान साधन है !

हम क्याकर अशा त हैं इस के लिये एक छोटा सा उपाहरण लिख रहा हूँ आप के लिये—

यह एक महाजन का चीका है। आग चूल्हे में जल रही है। उस पर एक दूध का बरतन रखा है। उस के पास एक नयी नवेली बटु एक लम्बा सा घूँघट निराले बैठा है। सायू भाट्ट लेकर घर बुझार रहा है। इतने में दूध लगा उबाने। उस ने नाचे से आग और तेज धर दी और उपर से लगी पाना के छींटे देने। दूध कब शान्त होने लगा। वह उबल उबल कर बाहर गिरने जगा। यही दशा हमारे मन की समझनी चाहिए। एक ओर प्रमाथिनी इन्द्रिये हमारे अमर्षादित आहार फिर यदि मन में अशांति रहे तो इस में आश्चर्य क्या ? तप ही इस की निरकुशता को दूर कर सकता है।

कइ लोगों का ख्याल है कि तप करने से बनता क्या है। यही अपने शरीर का कष्ट देने से क्या लाभ है भला ?

अपने के लोग तप के भेदों का समझ लेंगे तब वे ऐसी बेदगी बातें नहीं करेंगे। लोगों ने यह समझा हुआ है कि केवल भूंगे रहने का नाम ही तप है। और कोई तप है ही नहीं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। हमारे अधिष्ठा के अवतार भगवान मदावीर ने तप के भी दो भेद कर दिये हैं।

१ बाह्य तप

२ अन्तरङ्ग तप

इन दोनों तपों पर कुछ कलम चञ्जाने से पहले मैं आप को तप की आवश्यकता और स्पष्ट रूप से बनलाना चाहता हूँ ।

आप ने पूछा कि तप से क्या हाता है ? मैं पूछता हूँ आप से कि सोने का कुटाली में डाल कर आग में रखने से क्या होता है ? आप कहेंगे कि सना शुद्ध होता है । ठीक है, इसी तरह भगवान महावीर ने क्रमात्मा एक आत्मा के स्वर्ण को जो शरीर की कुटाली में पड़ा है उसे तप की आच देने से वह भी शुद्ध हाता है । शरीर को कष्ट दिये बिना कुछ मिलता भा ता नहीं और दूसरा बात यह है कि वह कष्ट आप को हाँट म ही कष्ट है किन्तु उस आत्म तत्त्व को कोई कष्ट नहीं क्योंकि समत्व के सामने कष्ट टिक नहीं पाता । जैसे मानव से शुद्ध घी निकालने के लिये इंडिया का तपाना और पाला करना पड़ता है ठीक इसी तरह आत्मा में कैवल्य और परमानन्द का शुद्ध घी निकालने के लिये शरीर के इस भाजन को तपस्व का आग पर चढ़ाना ही पड़ता है । किन्तु कवल आहार-त्याग को ही नहीं तप न खमक लेना क्योंकि एक रागा महीनों ही कुछ खाता-पीता नहीं फिर भी वह तपस्वी नहीं हो जाता ।

मङ्गल मूर्ति भगवान महावीर ने जो तप का एक अनूठी एव आवश्यक व्याख्या की है उसे जरा हृदयद्वम कर लेना चाहिये । जरा वाच्य तप के प्रकार देखिये —

अनशन

भोजन का परित्याग ही अनशन है यह अनशन शारीरिक, जैविक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी लाभदायक है । इस में शरीर को स्वास्थ्य बल और दीर्घायु आदि फल प्राप्त हाते हैं । बुद्धि का स्वच्छता मिलती है । मन में अनूठी शान्ति और आत्मा का शुद्धिक दर्शन हाते हैं । बहुत में लाग यैही देता देला अनशन कर लेते

हैं। जब भूय जोर मारती है तो फिर हाथ तोड़ा मचाने है। ऐसे मेरे मशनुभावों का 'यथाशक्ति' शब्द को भूजना नहीं चाहिये क्योंकि हर काम शक्ति अनुसार ही करना चाहिये 'जितनी चादर देवों उतनी पैर पसावो' का लाभाक्ति को अपने नजरों के सामने रगना चाहिये जो लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते उन्हें पाठ में नीना देना पड़ता है।

बहुत से लोग उपवास रख कर इधर उधर व्यर्थ घूमते रहते हैं। कोई नाश और शतरंज पर बैठे समय मगाने हैं तो कोई सिनेमा में आनन्द लूटते हैं। फर्द दुनिया के काम बंधों में लगे रहते हैं तो कोई यँी बैठ गये हॉलते रहते हैं। इस तरह भोजन के पीसे भले हा बच जाएँ और कुछ थोड़ा रहा स्वास्थ्य भले सुधर जाये किंतु आत्मा और मा को शान्ति नहीं मिल सकती। आत्म शान्ति हा तप का उद्देश्य है जिस की पूर्ति इस प्रकार के निष्कार तप में नहीं हो सकती। उपवास का तो अर्थ सीधा है, जिस में उन समीप बस-रहा प्रभों। आत्मा के पास पास रहना। या यँ कहिये कि आत्मा क क्षमा सरलता आदि गुणों का चिन्तन करना और उन गुणों को अपने व्यसहारिक जीवन में लाना ही सधा उपवास है। और यह करता है जाइ विरला हा। भाव ही अनशनों से मान भले ही मिल जाये किंतु निर्वाण नहीं मिल सकता। शत अनशा भावना पूर्ण होना चाहिये।

ऊनोदरी

भूय से कम खाना ही ऊनाप्य है। जा अनशन न कर सकते हा उँहें पहले इस तप का अभ्यास कर लेना चाहिये। यह तप का पहला पग है। यह एक हलका या आहार का त्याग है। जिसे करने के लिये थोड़े से नियन्त्रण की आवश्यकता है इस से रोग भी गरा होते हैं और विकार भी। इस में 'मित' शब्द को सदा याद रखना

पता है। मर्भन्ति राग वान से मन मग पुलानि गहता है। इस
 वर का यह मा अर्थ नहीं है कि आप इतना कम मानन करें जिन
 न आप निर्वन हा जों और आर समाज क काम भी न कर
 सकें। यन भी अरना शक्ति का आर पर हा पुल चदान हगि।
 कि आप इतो दुबले वाने हैं कि आप जिया प्रकार मा भाषा
 कृष नहीं सकते, ता काइ बात नहीं, आप अपन आप ही अन्तरङ्ग
 तप का तप ले जाइय, जो मरु का सामान है। आप तप ता
 अन्तरङ्ग तप का सहायक मात्र है। यन्तु अन्तरङ्ग तप ही मरु का
 अधिक माना जा हा है। इसी से सदा शान्ति मिलता है।

मिच्छाचर्या

मिच्छाचर से निर्वाह करना भी तप है। कि तु यह तप तो सगु
 का हा है। अरने अर्धमात्र पर जिन वान का यह एक अन्वय है।
 यह मिच्छाचर वृत्ति प्राय हर जगता वगै म प्रचलित था और है मा।
 आज यह मिच्छा वृत्ति समाज क लिए दुष्प्रयुक्ताना जा रहा है कर्कि
 कर अधिकांश ने इसे अरनी आज जिन का सामन बना रहा है।
 देश क शगर में शालभ्य, प्रगाद अकर्मण्यता आदि दुष्प्रवृत्तियाँ
 चले जा रहे हैं। जो देना है उस हा लोने का अतिकार है। जो अरने
 ज्ञान और चरित्र क पतनार्थ से देश को नाश का कारण है व इति-

महृशर समा बुद्धा

को उक्ति का अनुसरण करते हुये भिन्ना से निर्वाह करें ट यह उर क
 तप ही हागा।

रस-परिन्त्याग

पी, दूध और दही आदि पदार्थ रस कहे जाते हैं-अर का सदा मान्य
 त्याग हा 'रस-परिन्त्याग' तप कहलाता है। इस क दूध अर्ध कि
 यन्तु का स्वाद न लेना भी हा सकता है। जो मरु कहलान तर है

जिग का प्राय इन्हीं अर्थात् जयामुभा अथवा जिला है। अर्थात्
इस का 'शरदा' नाम का महाना मानते हैं।

कायाक्रेम

गरम और सखी अर्थात् प्रसन्न क. अथवा शरीर पर महान
ही काया क्रेम तब पड़ा जाता है। इस का अर्थमात्र शरीर का दुःख
दोष नहीं अपितु शरीर का साधना है। महानात्मा तो साधना का
ताप का पाता है। इस का अर्थमात्र महान जहाँ मन गवता।
इस लिये महाना महाना त इस तब को काया में रखा है

गुलीनता

अथवा इन्द्रिया का अथवा शिष्या से भोक्ता, अथवा अक्षर अथवा अर्थात्
काया का उभार न रना और मन, यात्री और काया के अशुभ
व्यापार का राका ही 'प्रतिमर्लानता' नाम का तब है। विद्वान् पान
तब की अगवता जिग इस तब तक पदुन्वता कटिन है तभी ता
इस का अर्थ में स्थान वि गता है। इस के अर्थ अगने अगन्तर
तब का अर्थ का अर्थमात्र जहाँ हो सकता। इस लिये इस प्रति
संलानता तब का एक ऐसा कही पदता चादिय जो दाना तब की
मिलाती है। यह साध तब की अगना गा अलक आप को जिगारे
गद है। अब आप के सम्पूर्ण अगन्तर तब को महती रनी अदिगी।

महाना महाना तै इस तब का भा. लुह भागे म अट दिया
है जैसे कि —

प्रायश्चित

जीवन का लक्ष्य है आत्म शुद्धि और यह भाव शुद्धि पर आधारित है।
भावना को विशुद्ध बनाने के लिये ही प्रायश्चित अर्थात् को आवश्यकता
है। जीवन अथ तब प्रमाद से भय है तब तक काठ भूल स्वभाविक
है। उत की अर्थ राक काम न की जाये तो वह भूल आगे बढ़ कर
समूचे जीवन को ले बैठती है। प्रायश्चित से भूल का सुधार दाता

है और भविष्य के लिये मनुष्य सावधानी में काम लेता है। उस की जड़न नैषा सुख चैन से बल्याण के तौर की ओर बढ़ने लगती है।

विनय

अपने मांसी की विनय बनाना और अपने जीवन का भाग जो कामल मांसी में दाल लेना ही विनय है। जैसे विनात पाका अपने मन्तप स्थान पर पहुँच सकता है, ठाक इसी मान्ति विनयशाल मनुष्य हा अपने लक्ष्य को पा सकता है। विनय ता धर्म का जड़ है—जैसा कि मन्थान महाधार ने परमाया

धम्मस्म विण्णो मूल

इस लिये मूल का सींचना चाहिये तभी धर्म का वृद्ध रूप भण होगा। जो माला मूल पर कुल्हाड़ा बना रहा हा और पत्तों पत्तों और हाता हाती का पाना दे रहा हा उस का वृद्ध कभी फूल फल नर्शा सकता। आत्र का मांसी शुक्र वायु क्रियाकाण्ड को लूब सींच रहा है कि तु संद ' कि अपने जीवन के विनय शादि भेष्ट गुणों पर धारी बना रहा है। ऊँचा उठने के लिये विनय का अराधना करनी होगी। तभी सुख मिलेगा। यह विनय एक महान् तप है और अखिन गुणों का धान है।

वैसाहृत्य

निश्चाम सेवा करना ही 'वैसाहृत्य' है। रोगी और ब्रह्म विजेर कर सेवा के पात्र हैं।

मधुर भाषित और रुद्रिण्यता सेवक के जीवन के मन्त्र मुक्त बदे आ सकते हैं। सेवा करने वाला अपने पराये का नहीं चकत्त। सेवा उस के जीवन का गुण है और यह हर स्थान ही हा ब्रह्म के लिये अपने जीवन की भेंट चढ़ाने का लिये तैयार रहता है। सेवा के यज्ञ में अपने आप का दाम देना पकत्त है। यह मुझ हैं। को विरल्य हा इसे कर पाना है। यह भी एक उच संज्ञक का तप है।

जात है क्योंकि ये अहिंसा के सहायक हैं। संसार यदि इस महान धर्म
 के पथ पर चले तो सुख हमारे चारों ओर खेलना रहे और हम
 उस से खेल कर जीवन के दिन बिताते रहें। विज्ञान की प्रलम्भकारिणी
 शक्तियाँ अपना मूँह बाये हमारे ऊपर नाचे और आगे पीछे पड़ी हैं
 उस के विनाश से बचने के लिये हमें धर्म की शरण में जाना
 होगा। धर्म के अभेद दुर्ग में जा कर ही दुनिया से युद्ध का भय दल
 सकता है अथवा नहीं। धर्म समस्त विश्व का अभय दाता दे कर
 जीवन दान देता है। विज्ञान और धर्म यदि इकट्ठे चलें तो जगत
 में शान्ति के फव्वारे छूटने लगें और एक सुख का साम्राज्य छा
 जाये। आज का विज्ञान धर्म की अखेलना कर रहा है। समय आएगा
 जब कि विज्ञान ऊँचे चढ़ कर गिरेगा और चाटें खा कर रोयेगा।

यह धर्म की शरण में जायेगा। धर्म इस के अर्थात् पीटेगा और
 अपनी सहानुभूति के घूँट खिलायेगा और इसे अपने संग ले कर
 चलेगा। धर्म और विज्ञान दोनों मिल कर अमन चैन की पताका
 पानेंगे यह धर्म सदा महल है इस की शरण में जो भी गया सो वह
 महल ही गया।



धर्मप्रियता

धर्म और उस के स्वरूप की कुछ भावना बिना ही म विचार का बुझा है। अब उस के फल पर भी कुछ विचार हम ने करना है। वेने तो फल का कामना ह्य म रहना नहा चहिये। पलाशाना शरक की साधना को निराल बना देता है क्योंकि यदि कुछ समय तक उमे अपने कम का पन न मिले तो उस की भडा उठ जाता है और वह धीरे धरे कर्त्तव्य व्युत हो कर भट हा जात है। निष्कामता में ही कर्त्तव्य की उच्चता है किन्तु जन साधारण किसी कार्य प फल का जन बिना उस को करने के लिए उद्यत नहीं हाते। फल उा के लिये एक विशेष आकर्षण है। पाछे मा धर्म और उस क फल पर प्रथम ता बाला का बुझा है किन्तु यहा कुछ विशय रूप से निगता का प्रकृत किया जायेगा। महल मूति अमण भगवान महारा न अपनी गाथा के तीसरे और चौथ पद म परमान हुए कहा कि

देवत्रि त नममन्ति

जन्म घम्मे सया मणो

अर्थात् — जिस का मन धर्म में लगा लगा रहता है उस क चरण-सरोवा पर ता देवता भी सर मुकाने हैं।

यहा 'देवत्रि' शब्द पर कुछ प्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि इस शब्द के सम म कुछ रहस्य हुया हुआ है जिस का उद्घाटन हमें करना है। भगवान परमाते हैं कि धर्मप्रिय पुरुष के चरण ता देवता भी पूजन हैं। इस का तात्पर्य यह है कि जब दवता भी पूज. करने हैं तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या है। उस के धार्मिक बान स प्रमाणित हा कर हर एक छोटा बडा उस में प्रेम किये बिना न रहगा और हर एक को उस पर निश्वास पूरा पूरा होगा और उमे हर एक की फलकों की निहा के भीतर विश्राम मिलेगा। सारा संसार उस का है और वह है सारे संसार का। उमे दुनिया अपने अन्तर देखनी है और सारी दुनिया को वह देवता है। उसके यथागन

घरती में लेकर आकाश मण्डल तक गूँजने है। वह तीन लोक का म्यामी जन वर अमरत्व को पा जाता है और वह देना का भा पूष बन जाता है।

यह जरा 'सया' शब्द पर भी विचार कर लेना चाहिये। गदूत से लोग केवल मन्दिर और स्थानक आदि स्थाना म ही धर्मात्मा गजर आते हैं और उठ के बाट अपनी दुःख और घर में आकर 'धर्म' को भूल जाने हैं। उन का बाह्य जीवन साफ सुथरा टारता है किन्तु उन के माँतर हृदय में गद भरता रहता है। धर्म का केवल एक द्वांग लिया जाता है। धर्म उन के जीवन म उतरा हुआ नहा होता। ऐसे लोगों के पाठ पत्रा पर देवता मस्कार नहा करते और जन समाज के लिए वे आनन्द नही हो सकते। इस प्रकार का धर्म का द्वांग तो गोबर की मिठाई पर साने का बरक विपदान के बर बर है।

इस गाथा का 'सया' शब्द हमारा आँलें म्पोलता है कि धर्म केवल मन्दिर या उपाश्रय म हा नहा हाता चाहिये अपितु वह ता हमारे जीवन के साथ सदा रहना चाहिये। हम वही भा जाएँ धर्म हमारे साथ जा । चाहिये। धर्म और जीवन का चाली दामन का सा सम्बध है। धर्म और जीवन का अलग अलग नहा रहना चाहिये। इन दोनों का एकमएक हा बाना चाहिये। तत्र जाकर आप देवा के पूजनाथ बन सकेंगे और सारे विश्व का विश्वास आप जात सकेंगे। आप के हर कर्म म अदिसा, स्वयं और तप का मुगधि रहनी चाहिये। हमारा पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन इस भगवान वीर के प्रभाव हुए मच्च धार्मिक धर्म म रगा हुआ होना चाहिए। हम अपनी नैतिकता और अपने व्यवहार का प्रामाणिकता के गन से ही अपनी धार्मिकता को नाग सकते हैं। हमारा हर कार्य धर्म ही सामा म रहना चाहिये तथा हम समुज्वल होकर भूतक पर चमकेंगे और सर्वप्रिया हमारे साथ साथ रहेगा। मे अधिक प्रष्ट भग्ना नही चाहता। अत मैं अपनी लोगनी को यदा विश्राम देना हूँ। इत्यनम् ॥

